पितृकर्म-मीमांसा

लेखक

हरिशंकर दीक्षित

॥ ओ३म् ॥

* पितृ कर्म्म मीमांसा *

वेद का मौलिक सिद्धांत, सृष्टि का स्तम्भ,
जनता के सुखों का स्रोत, ऋषियों की
कुशाग्र बुद्धि का फल, असंख्य
काल से लुप्तप्राय आविष्कार

जिसको

श्री पं० रामयश दीक्षितात्मज हरिशंकर दीक्षित
ने लोकोपकार तथा विचारशील सज्जनों के
अवलोकनार्थ वेद, स्मृति तथा पुराणों
प्रमाणों और युक्तियों तथा
तर्क वितर्कों सहित
रचा

प्रथमवार १००० | सम्वत् १९८६ | सन् १९२९ | मूल्य ।=)

प्रकाशक—
वैद्य हरिशङ्कर दीक्षित
नगीना (बिजनौर) यू. पी.
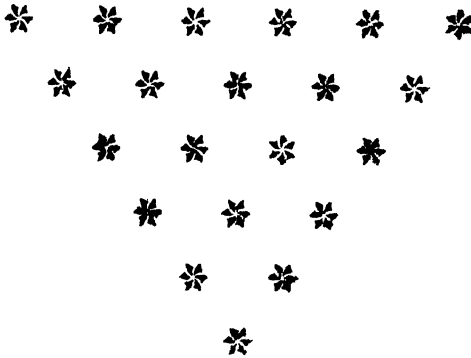
मुद्रक—
बाबूराम शर्मा
वीर प्रेस, बिजनौर यू. पी.

* वक्तव्य *
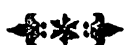
पाठकगण को यह भी विदित हो कि पूर्व यह विषय मैंने अपनी बनाई त्यौहार पद्धति के अन्तर्गत ही रक्खा था। किन्तु बहुत से इष्ट मित्रों की सम्मति यही हुई कि इस विषय को पृथक् ही छपाना उचित है। कारण यह है कि यह विषय तो स्वयं ही अपने स्वरूप से पुस्तकाकार होगा। द्वितीय यह विषय साधरण जनता के बूते का भी नहीं। इत्यादि कारणों से पृथक् ही छपाना चाहिये। इष्ट मित्रों की सम्मति ने मेरे विचार को भी पलटा दे दिया। अब यही विचार होगया कि पृथक् ही छपे। इस लिये यह स्वतन्त्र रूप से छपाया गया है।

—लेखक।

अथ भूमिका

मैं एक साधारण व्यक्ति हूं संस्कृत तथा भाषाका विशेष ज्ञाता नहीं। दोनों भाषाओं का साधारण ज्ञान है किन्तु ग्रन्थोाव-लोकन का व्यसन अवश्य है। छोटे बड़े सभी ग्रन्थों के अवलो-कन का अवसर प्राप्त हुआ, जिन ग्रथोंके अवलोकन का अव-सर नहीं भी मिला उन का सार उन ग्रन्थों के ज्ञाता पंडितों से विदित हुआ। इस प्रकार श्रवण करने और स्वयं विचार करने से यही निश्चय हुआ कि पितृ कर्म वैदिक मतावलम्बी जनता के कर्तव्य कर्मों में से एक कर्त्तव्य कर्म्म है। यदि इस पितृ कर्म्म को सृष्टि का स्तम्भ और जनता के सुखों की आधारशिला कहा जाय तो अनुचित नहीं। यदि और गम्भीर विचार द्वारा अवलोकन करा जाय तो यह स्पष्टतया विदित होता है कि प्रभु की जंगम और स्थावर दोनों प्रकार की रचनायें इसी कृत्य विशेष के द्वारा अवलम्बित हैं। किन्तु न जाने कितने काल से भारत की पण्डित मंडली का विचार इस अत्युपयोगी कार्य से नितान्त उलटा होगया: जिस का फल यह हुआ कि (आप डुबंते पांडियो लेडूबे यजमान) न तो स्वयं ही इस कृत्य की सारता कोजाना और न साधारण जनता को जानने का अवसर दिया। चिरकाल से इस कृत्य

के विषय में दोनों प्रकार की जनता का यह विश्वास दृढ़रूपसे हो गया है कि पितरों के अर्थ किये श्राद्ध में दिया हुआ जल तथा अन्न उन की क्षुधा तथा तृषा की निवृत्ति का मुख्यतम कारण है। यह विचार तो सत्य है कि श्राद्ध का सम्बंध पितरों से तो अवश्य है, जो कृत्य पितरों के अर्थ किया जाता है उस के गृहण करने वाले पितर ही कहे व माने गये हैं। इस विषय में छोटे बड़े सभी गृन्थ साक्षी हैं इन के अतिरिक्त वे गृन्थ भी इस विषय का समर्थन करते दृष्टिगत होते हैं कि जिनका न तो यह कृत्य विषय है और। न उन गृन्थों का इस विषय से कुछ संबन्ध है। गीता एक उपदेश का गृन्थ है, किन्तु वह भी पितृ कर्म्म का वर्णन करता है :—

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया॥

अर्जुन कृष्ण के प्रति कहते हैं कि "हे कृष्ण ! पितरों को पिण्डोदक न देनेसे पितर पतित होजाते हैं।" सूर्य्य सिद्धान्त ज्योतिष का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है, उसका विषय खगोल तथा भूगोल का वर्णन है, इस विषय से उसका लेशसंबन्ध भी नहीं किन्तु वह भी पितृकर्म्म का समर्थन करता है।

सूर्य्य सिद्धान्त में षड्शीति मुख की तीन संक्रान्ति मानी हैं वहां लिखा है कि कन्या की संक्रान्ति के १४ अंश छोड़ कर

शेष सोलह अंशोमें (पितॄणां दत्तमक्षयम्) पितरोंके अर्थदिया हुआ अक्षय होता है। सूर्य्यसिद्धान्त के टीकाकार श्री पंडित-वर्य्य सुधाकर द्विवेदीयजी ने इस दानपरक लेख के मर्म्म पर दृष्टिपात न कर यह लिख दिया कि यहां यह दान का विषय असंगत प्रतीत होता है किन्तु आर्षवाक्य होने से मानना ही अच्छा है। यह हम आगे चलकर अवलोकन करायेंगे कि सूर्य्य सिद्धान्त के कर्त्ता का कथन वेद रहस्य से परिपूर्ण है। यहां तो यह दिखाना है कि जिन ग्रन्थों का यह कृत्य विषय भी नहीं वे भी पितृकर्म्म विषय को कर्तव्यकर्म्म कहते हैं। जो ग्रन्थ इस विषयके पदे २ पक्षपाती हैं उनका तो यह प्रतिपाद्य विषय है ही। वेद, स्मृति, पुराण सभी ग्रन्थ पितृ-कर्म्म का प्रतिपादन मुक्तकण्ठ से करते हैं। जिस कृत्य का सभी छोटे बड़े ग्रन्थ प्रतिपादन करते हों और जनता में भी वह इतनी अधिकता से होता हो कि वैदिक मतावलम्बियों के अतिरिक्त जो जातियां भय तथा लोभ से अन्य मतावलम्बियों के चुंगल में पड़ गई हैं, वे भी किसी न किसी रूपसे इस कृत्य को करती दृष्टिगत होती हैं। इतने बाहुल्येन होने वाले अत्यन्त उपयोगी और वेद प्रतिपादित विषय को वैदिक मत का स्तम्भ पण्डित वर्ग उपेक्षा की दृष्टि से अवलोकन करे यह आश्चर्य्य तो कहा ही जायगा किन्तु पण्डित मण्डली का प्रमाद भी बिना कहे नहीं रहा जाता। वेद प्रतिपादित विषय दिग्गज विद्याभिमानी मण्डली की क्रीड़ा कन्दुक हो, क्या

साक्षरवर्ग इस लाञ्छन का भागी नहीं ? यद्यपि साक्षर मण्डली ने इस परमोपयोगी कृत्य की यथार्थता पर ध्यान न दे स्वयं भी शुद्धरूपसे से न करा और न साधारण जनता को करने दिया, किन्तु अनेक व्यक्तियें के खण्डन करने पर भी इसे न छोड़ा यह सराहनीय बातहै। कार्य्य सीधा हो वा उलटा सारभूत होने से काल पाकर सीधा हो ही जाता है। इतिहासों के अवलोकन से यह विदित होता है कि अपने २ समय में बौद्धमतावलम्बियें से लेकर सभी पन्थाई साधुओं ने इसके खण्डन में ऐडी से चोटीपर्य्यन्त का बल लगाया, किन्तु भारत की असाधारण तथा साधारण दोनें प्रकार की जनता ने इस कृत्यको न त्यागा। कारण इसका यह प्रतीत होता है कि भारत की जनता के कर्णगोचर यह हो चुका था कि पितृ कर्म्म की आज्ञा वेद के द्वारा हुई है। वेदकी आज्ञा का त्याग उस समय पर्य्यन्त करना उचित नहीं जब तक कि कोई वेदों का असाधारण विद्वान् यह न कहे कि अमुक कार्य्य वेद में इस प्रकार है। जिन पन्थाई साधुओं ने पितृकर्म्म का खण्डन किया उनके विषय में जनता का विश्वास निश्चयरूप से यह था कि ये वेद के ज्ञाता नहीं, अतएव इनके कथन पर विश्वास न करना ही उचित है। पन्थाई साधुओंके बाहुल्येन खण्डन करने पर भी जनता का वह विश्वास कि यह कृत्य हमारे मृत पितरों को क्षुधा तृषा की निवृत्ति का मुख्यतम कारण नहीं, रेखा मात्र भी विचलित न हुआ। जिस कालसे

श्री स्वामी दयानन्द यतिवर ने यह घोषणा की कि वेद में श्राद्ध जो पितरों के अर्थ होना उचित है उसकी आज्ञा तो दृष्टिगत होती है किन्तु जिस आशय से वर्तमान में होता है वह सर्वथा त्याज्य है। श्राद्ध का सम्बन्ध पितरों से तो है किन्तु उन पितरों से नहीं जिनको संप्रति पितर माना जाता है। उसी काल से भारत की असाधारण तथा साधारण जनता का विचार डामा डोल होगया। जनता का विचार था कि यतिवर वेदों के अपूर्व ज्ञाता हैं इन का कथन असत्य नहीं हो सकता। पाठक वर्गको यह भी ज्ञात हो कि मत्सरता भी एकऐसा दोष है जो किसी न किसी अंशमें सभी मानव मण्डल में बना रहता है, अज्ञ जनता की अपेक्षा साक्षर जनता में बाहुल्येन पाया जाता है। इस विषय में श्री भर्तृहरि ऋषि की यह साक्षी भी हैः—

> बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
> अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥

श्री भर्तृ ऋषि का कथन है कि "मेरा विचार मेरे अङ्ग में ही जीर्ण हुआ जाताहै, कारण कि विद्वान् मण्डलतो मत्सरता से ग्रस्त है, दूसरी कोटि के जन धनगर्व में चूर हैं, तीसरी कोटि के महानुभाव किसी अच्छे विषय के पात्र ही नहीं।" इस कथनानुसार भारत की साक्षर मण्डली को इस मत्सरता ने यह आज्ञा न दी कि इस कथन पर विचार तो करें। किन्तु

विचारे आदि से यही हट रक्खो कि पितर तो मृतक ही हैं। इस मत्सरता से यही पक्ष सिद्ध करने पर उतारू हुये कि श्राद्ध मृतकों की ही तृप्ति के अर्थ होना चाहिये। यतिवर की घोषणा के विरुद्ध यत्र तत्र शास्त्रार्थ होने आरम्भ होगये। इन शास्त्रार्थों में दोनों पक्षों का विवाद मृत और जीवित ही रहा। अर्द्ध शताब्दि के लगभग काल होने को आया, किन्तु इस ओर दोनों पक्षों में से एक का भी ध्यान न आकर्षित हुआ कि वेद जिस पितृ कर्म्म की आज्ञा खुले शब्दों से देरहा है वह कोई अत्यन्त उपयोगी ही कार्य्य होगा। इस पर विचार तो करें। यद्यपि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का यह सिद्धान्त "कि श्राद्ध जीवित मातापिताओं का ही कर्त्तव्य है" मृतकों का श्राद्ध मानने वालों की अपेक्षा अधिकांश में श्रेष्ठ है। किन्तु जिन पितरों के अर्थ वेद आज्ञा देता है उस अभिप्राय से कहीं दूर है। जिन महाशयों का सिद्धान्त मृतकों के विषय में है वे तो वेद से नितान्त ही विरुद्ध हैं। यतिवर के इस कथन में जीवित मातापिताओं की सेवा सुश्रूषा करना ही श्राद्ध है, मनुष्यता परिपूर्ण है कारण कि जीवितों के साथ ऐसा करना उपकार है द्रव्य और कालका सदुपयोग भी माना जासकता है। मृतकों के अर्थ माननेवालों का कार्य्य मनुष्यता से वाह्य है उसमें काल और द्रव्य का भी दुरुपयोग होता है। अपना यह विचार दृढ़ रूपसे है कि यदि यतिवर

की आयु शेष होती तो वे इस पितृ कर्म्म विषय पर पुनः प्रकाश डालकर इसकी यथार्थता पर अवश्य ध्यान देते

यतिवर विवेकी थे, विवेकी की आत्मा में हठ नहीं होता। उनके ग्रन्थावलोकन से भी यही विदित होता है कि उनको सत्यग्रहण से अत्यन्त सहानुभूति थी। सत्यग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

अपने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में यतिवर लिखते हैं कि "इस ग्रन्थ में जो कहीं २ भूलचूक से अथवा शोधने तथा छापने से भूल चूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जैसा वह शब्द होगा वैसाही करदिया जायगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका वा खण्डन मण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जायगा। हां जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य २ समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।" क्या इन वचनों से यह ज्ञात नहीं होता कि यतिवर जैसे शुद्ध आत्मा मानव मण्डलके हितैषी इस विषयको जो वेदों का प्रतिपाद्य और स्थावर तथा जंगम रचना का आधार उस को अधूरा छोड़ जाते, यह कब सम्भव था। यतिवरको कालने इतना अवसर ही नहीं दिया जिससे कि वे इस विषय पर विचार कर इसकी यथार्थता पर विचार करते। यतिवर ने अपनी जिन अकाट्य युक्तियों से विपक्षियों को निरुत्तर कर मूक बना दिया वह समय वैसाही था। न्याय दर्शन के मता-नुसार शास्त्रार्थ की उत्तमता यही मानी गई है, कि वादी के

पक्ष को हटा अपना मनवादे । शास्त्रार्थों के समय विपक्षियों का पक्ष यही था कि श्राद्ध मृतकों के ही अर्थ होना चाहिये। यही वेद का मत है । यतिवर ने मृतक श्राद्धको हटा अपना जीवितों का श्राद्ध स्थापन करा । यदि उस समय मृत जीवितों का विषय न होता तो अवश्य इस कृत्यकी यथार्थता पर विचार होता । गणना करते चूक होजाय तो पुनः गणना आरम्भ करना बुरा नहीं अच्छा ही है । सुबह का भूला यदि सायंकाल को गृह पर आजाय तो वह भूला नहीं कहाता । इत्यादि कारणों से वर्त्तमान कालके विद्वानों द्वारा इस वेद प्रतिपादित विषय पर विचार होने की आवश्यकता है । विचारकर देखने से यह प्रत्यक्ष होता है कि इस विषय की यथार्थता से अभी दोनों पक्ष सहस्रों नहीं लक्षों कोस दूर हैं । मृतकों को पितर मानने वाले तो नितान्त ही इसकी यथार्थता से विरुद्ध हैं। अभी इस कृत्य की वह यथार्थता जिसको शास्त्रकारों ने जाना और इस को अन्य कृत्यों की अपेक्षा अच्छा माना दोनों पक्षोंको प्राप्त नहीं हुई । यदि शास्त्र ही इस कृत्य को अधिक मान देते तबतो यह कहा जा सकता था कि शास्त्रकारों का कोई स्वार्थ होगा। किन्तु इस कृत्य का प्रतिपादक तो वेद है जिसके विषय में एक आस्तिक का यह कहना कि "वेद भी किसी स्वार्थ से इस विषय का प्रतिपादक है" किसी अंश में भी उचित नहीं । पाठकगण ! क्या आप को यह विदित नहीं कि जब तक तर्क ऋषि की मूर्त्ति नहीं होती, तब तक वह विषय पूर्ण नहीं माना

जाता। जीवितों का श्राद्ध मानने वाले महाशयों को स्वयं यह विचारना उचित है कि जिस श्राद्धका प्रतिपादन वेद भगवान् के द्वारा किया गया है, वह अपने कालों से स्वयं यह बता रहा है, कि मैं किन्हीं व्यक्तियों के अर्थ नहीं, मैं किसी ऐसे कार्य्य के अर्थ हूं कि जिसके आश्रय स्थावर और जङ्गम दोनों प्रकार की रचना सुस्थित हैं। श्राद्ध का काल प्रत्येक मास की अमावस्या तथा शरद् ऋतु एवं अष्टका कही गई हैं। जो महानुभाव यह मानते हैं कि नित्य माता पिता आदि को भोजन कराना ही श्राद्ध है, उनके कथन में यह दोष आता है कि शास्त्रों ने उक्त कालों ही में किये कृत्य को पितृकर्म्म कहा है, मनु धर्म्मशास्त्र और वेद अमावस्या में किए श्राद्ध को नित्य का श्राद्ध मानते हैं, कारण यह है कि पितरों का दिन एक मास का ही होता है एक मास में अमावस्या को किया श्राद्ध पितरों का नित्य का श्राद्ध है। जीवित माता पिता आदि का नित्य भोजन श्राद्ध में घटित नहीं होता, वेद को माता पिता के अर्थ यदि भोजन कराना श्राद्ध कहना इष्ट होता तो जिन मनुष्यों को आहार दिन में दो वार करने की आज्ञा है क्या। उनको एक मास में एक वार करने को आज्ञा देना माता पिता को भोजन कराना वेदों से टक्कर नहीं खाता। माता पिता की सेवा करना सद् व्यक्तियों का स्वाभाविक धर्म्म है। इस सामान्य कर्म्मकी आज्ञा वेद से हो यह अपने विचारों की संकीर्णता है। वेद में कहे पितृ कर्म्मकी आज्ञा मनुष्यमात्र को है, जिनके माता पिता

जन्म कालही में पयान कर गये वह पितृ कर्म्म किसको करें। उसके अर्थ वेदाज्ञा निष्फल होगी। गृह्यसूत्रों तथा धर्म्म शास्त्रों के अवलोकन से यह विदित होता है कि यज्ञोपवीतके अनन्तर ही पञ्च महायज्ञोंके करने की आज्ञा है। जिनके अन्तर्गत पितृ कर्म्म भी आजाता है। आठ दश वर्ष का बालक स्वयं ही पिता के दिये अन्न का भोक्ता होता है। वह माता पिताको भोजन दे, कितने आश्चर्य्य की बात है। पितर शब्द बहु वचनान्त होने से यह विदित करता है कि जिनकी पितर संज्ञा है वे बहुत हैं, शास्त्रों के अवलोकन से भी यह ज्ञात होता है कि श्राद्ध सर्वदा पिता, प्रपिता, वृद्ध प्रपिता इन तीन ही का कर्त्तव्य है, उक्त तीन व्यक्तियों का दर्शन बड़े सौभाग्य से किसीको प्राप्त होता है। इत्यादि कारणों से केवल मातापिता वा अन्य अतिथि आदिको भोजन कराकर पितृ कर्म्म से निवृति मान लेना शास्त्रदृष्टा के लिये गौरवास्पद नहीं। जिन महानुभावों का सिद्धान्त मृतकों के अर्थ श्राद्ध कर्म्म वेद विहित है नितान्त वेद विरुद्ध है और इस कथन से कि मृतक श्राद्ध वेद विहित है, यह विदित होता है इन महानुभावों ने वेदका दर्शन ही नहीं करा। यदि वेदके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता तो मृतकों के अर्थ श्राद्ध कर्त्तव्य है ऐसा कहदेने का साहस न करते। वेद खुले शब्दों से यह बताता है कि असंख्य तारागण का समूह यह खगोल दो भागों में विभक्त है, दक्षिण भागका नाम पितृ यान और उत्तरीय भागका नाम

देषवान है, अनादि वेद का वचन होने से यह भी सिद्ध होता है कि दक्षिणोत्तर भाग की ये संज्ञाभी अनादि ही हैं। जिनका मत यह है कि दक्षिण भागःमें रहने वाले पितर हमारे मृत मातापिता तथा अन्य सम्बन्धी ही हैं, यह भी तो विचार करना था कि दक्षिण दिशा के स्वामी पितरों की पूर्त्ति तो मृत पितरों ने करदी देवभाग जो उदीची दिग्‌का स्वामी कहाया गया है, उसकी पूर्त्ति किन व्यक्तियों द्वारा हुई। मृतकों की तृप्तिके अर्थ श्राद्ध मानने वालों से यह प्रश्न भी हो सकता है कि शास्त्रों के मत से श्राद्ध पिता प्रपिता वृद्ध प्रपितामह इन्हीं तीन व्यक्तियों का होना चाहिये, फिर यह चाची, ताई, माई, मामा, मामी, नानी, नाना आदिका कहां से आया। पुराण मत अवलोकन से यह भी विदित होता है कि एक लक्ष वर्ष पर्य्यन्त श्राद्ध हुआही नहीं पितरलोक श्राद्धसे रिक्त रहा। पुराणमतानुसार प्रत्येक युगमें मनुष्यों की आयु का मान पृथक् २ कहा गया है। जैसे कि कृतयुग में एकलक्ष और त्रेता में दश सहस्र एवम् द्वापर में एक सहस्र और कलि में शत वर्ष इस मान को दुर्जनतोष न्याय से मान भी लिया जायतो यह सिद्ध होता है कि प्रथम कृतयुग का प्रवेश आयु लक्ष वर्ष पर्य्यन्त मृत्यु का अभाव रहा, जब मृत्यु नहीं हुआ तो पितर भी नहीं बनें पितर न बनने से श्राद्धभी नहीं हुआ, श्राद्ध न होने से एक लक्ष वर्ष पर्य्यन्त पितरलोक श्राद्धसे रिक्त रहा इत्यादि कारणों से मृतकों को पितर मानने वालों का भी पितृकर्म्मपथ कंटकाकीर्ण

ही प्रतीत होता है। इन महानुभावों और यतिवर स्वामी दयानन्द के अनन्य भक्तों की सेवामें प्रार्थना है कि वे इस विषय पर निष्पक्ष भाव से परस्पर प्रीति पूर्वक विचार करें।

पाठकगण ! यहभी स्मरण रहे कि हमारे विचारोंकी संकीर्णता हमारे ही पर्य्यन्त नहीं रहती, अपने नेता को भी तुच्छ बनाती है। यदि हमारे ही सनातनी भ्रातृवर्ग इस कृत्य को उसी अभिप्राय से मानते वा करते चले आते कि जिस अभिप्रायसे इस सत्य के करने की आज्ञा वेद ने दी थी तो अन्यों के द्वारा इस उत्तम कर्म्म की अवहेलना अवलोकन करने का अवसर भी प्राप्त न होता। अपने पुरुषाओं की प्रतिष्ठा तथा अप्रतिष्ठाके कारण उनके अनुयायी वर्ग ही होते हैं अतएव दोनों पक्षके विद्वानों को यह उचित है कि पक्ष की चाक्षुष्य को उतार विचारकर. इस कार्य्यकी यथार्थता जान और जनाकर पुण्य के भागी बनें। प्रभुने आपको विद्याप्रदान की है और अज्ञ जनताने अपने सुखों को आपके हाथों में दिया है। साधारण जनता आपके आधीन है. उसको सुखों से वंचित कर पाप मत कमाओ। पक्षकी चाक्षुष्य उतारो और प्रभु से प्रार्थना करो कि हे प्रभु हमारे हृदयों में सत्वगुण का आधान कर जिससे कि हमे प्रत्येक कार्य्य का यथार्थ दर्शन प्राप्त हो और उसे आपकी आज्ञानुकूल कर सुख भोगने के पात्र बनें।

॥ ओ३म् शम् ॥

* अथ प्रकरणारम्भः *

पाठकगण ! भूमिका के अवलोकन से यह आपको निश्चय रूप से विदित होगया होगा कि पितरों को जीवित तथा मृतक मानना वेद तथा शास्त्रों के मत से नितान्त विरुद्ध प्रतीत होता है। जिन पितरों के अर्थ श्राद्ध का विधान वेद में है, वे पितर कौन हैं? इसकी गवेषणा करने के अर्थ पुराणों से लेकर वेद पर्यन्त विचार करने की आवश्यकता है। इस विषय की खोज के प्रथम पुराणो की खोज कर्त्तव्य है, कारण कि मृतक श्राद्ध मानने वालो का पुराणों पर ही यह विश्वास है कि पुराण ही मृतक श्राद्ध के अधिकांश में प्रतिपादक हैं। क्या पुराण भी मृतक तथा जीवितों को ही पितर मानते हैं?

वसवः पितरो ज्ञेयाः रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः।
प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषा सनातनी॥

—मनु देवल।

आठ संख्या वाले (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा और तारागण) वसुओं को पितर कहते हैं। रुद्रसंज्ञक वायु पितामह हैं, बारह संख्या वाले आदित्य प्रपितामह हैं। यह सनातन श्रुति है।

विष्णुः पितास्य जगतो दिव्यो यज्ञः स एव च।
ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो रुद्रो हि प्रपितामहः ॥

—विष्णुपुराण।

विष्णु जिसको दिव्य यज्ञ भी कहते हैं वह जगत् का पिता है। ब्रह्मा की पितामह संज्ञा है। रुद्र प्रपितामह कहे जाते हैं।

मासाश्च पितरो ज्ञेया ऋतवश्च पितामहाः।
संवत्सरः प्रजोमाञ्च विज्ञेयः प्रपितामहाः ॥

—आदित्यपुराण।

मासों की पितर संज्ञा है, ऋतवों की पितामह और रुद्र प्रपितामह है।

पुराणों की उक्त साक्षियों ने स्पष्ट कर दिया है कि पितर न मृतक हैं और न जीवित हैं।

बृहद् गरुड़ पुराण पितरों की संख्या और संज्ञा विचित्र ही रूप से कथन करता है—

विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्म्मो धर्मन्यः शुभाननाः। भूमिदो भूमि कृद्भूतिः पितृणां ये गणानवः ॥ कल्याणः कल्पदः कल्पतरः कल्पसराश्रयः। कल्पता हेतु रनघः षड़िमेते गणाः स्मृताः ॥ वरो वरेण्यो वरदो भूमिदः

पुष्टिदस्तथा । विश्वपातास्तथा धाताः सप्तैते गणाः स्मृताः ॥ महान् महात्मा महितो महिमा-वान् महाबलः । गणाः पञ्च तथैवेते पितृणां पाप नाशनाः ॥ सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदो-ऽन्यश्चभूतिदः । पितृणां कथ्यते चैतत् तथा गण चतुष्टयम् ॥ एकत्रिंशत् पितृगणा येऽर्था-सममखिलं जगत् । ते मेऽत्र तृप्तास्तुष्यन्तु दि-शन्तु च सदा हिताः ॥

बृहद् गरुड़पुराण ।

नव, छः, सात, पांच और चार ये ३१ गण पितरों के हैं। संस्कृत बहुत सरल है, इन नामों से इनके कार्य स्वयं विदित होते हैं। पितरों के नामों से यह विदित होता है कि इन ३१ संख्या वाली शक्तियों के द्वारा ही जगत् की उत्पत्ति और पालन होता है। इसी हेतु से इनकी पितर संज्ञा कही वा मानी गई है। पाठकों को विदित हो कि उक्त पुराण ने ३१ गण कहे हैं, गण नाम समूह का है। न जाने इन गणों में कितने पितर और हैं। संख्या स्पष्ट करने वाले ऋषिवरों ने संख्या भी कही हैं।

सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ता प्रकीर्त्तिताः । षडशीति सहस्राणि तथा वर्हिषदो द्विजाः ॥

अग्निष्वात्ता संज्ञावाले पितर ६४ सहस्र हैं और बर्हिषद् ८६ सहस्र कहे जाते हैं। यह संख्या और संज्ञा उनही शक्तियों की हो सकती है जो उस काल में विद्यमान थी वेद के द्वारा ऋषिगण ने जिनको जाना अविद्यमान की संख्या होनी असम्भव है। जिन महापुरुषों का यह कथन हे कि, मृतक पितर बनते हैं केसे सत्य माना जा सकता है क्या सुध है कि सृष्टि की आदि से अद्यावधि कितने मृत्यु हुए और होंगे। पितरों के विषय में पुराण भी वेद के मत को पुष्ट करते हैं पुराणों के मत से भी यह सिद्ध हो गया कि पितर न मृत हैं और न जीवित। पुराणों की साक्षी ने उन महानुभावों के साहस को वड़ा भारी धक्का दिया जो पुराणों से मृतक श्राद्ध सिद्ध करने का साहस करते थे। आशा तो यह है कि पुराणों पर विश्वास रखने वाले इन पुराणों की ही साक्षियों से जो सर्वांशो में वेदमतानुकूल हैं अपना यह पक्ष कि श्राद्ध मृत को का ही होना उचित है सर्वदा के लिये छोड़ देंगे किन्तु यह आशा निराशा ही हे कारण कि विवेकी आत्मा तो हठ से पक्ष के आश्रय न हो सत्य को ग्रहण कर लेता है हठी दुराग्रही हट के वश में रहता हुआ ऐसा करने में अपनी क्षति मानता है। पक्ष गिरने पर पक्षी सत्य को भी असत्य कहने लगता है हठी आत्मा यह कह सकता है कि पुराण धर्म्म ग्रन्थ नहीं धर्म्म ग्रन्थों में स्मृतियों का गृहण है स्मृतियों में मृतक श्राद्ध ही को

श्राद्ध माना है। पुराणों की अपेक्षा स्मृतियों का प्रमाण माना जा सकता है।

पाठकगण निर्मल कुन्दन चाहे नेत्रों से अवलोकन करो वा कसौटी पर परखो चाहे अग्नि पर तपाओ सब प्रकार स्वच्छ ही दृष्टिगत होगा। इसी प्रकार हमारा पितृकर्म चाहे पुराणों से अवलोकन करो वा वद स्मृतियों से सिद्ध ही ठहरेगा सत्य सब अवस्थाओं में सत्य ही होगा। सत्यवादी सत्य को सत्य ही कहेंगे। पुराणों ने भी पितरों के विषय में सत्य ही कहा है, अब स्मृतियों के पितृकर्म विषय पर दृष्टिपात करने की कृपा करिये है। स्मृतियों के विषय में पहिले यह निश्चय होजाना उचित है कि १८ स्मृतियों में से किस स्मृति का प्रमाण माननीय है।

पाठकों को यह भी विदित हो कि यद्यपि स्मृतियों की संख्या १८ है और पितृकर्म विषय का प्रतिपादन भी सभी में है, किन्तु जितना विस्तारपूर्वक मनुस्मृति में दृष्टिगत होता है उतना अन्य स्मृतियों में नहीं पाया जाता। मनुस्मृति के विषय में पडित मण्डली का भी यही विचार है कि—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात् प्राधान्यो हि मनोस्मृतम्।

सर्वांशों में वेदानुकूल होने से अन्य स्मृतियों की अपेक्षा मनु धर्म शास्त्र ही को प्राधान्य है। अतएव मनु धर्म शास्त्र के ही पितृकर्म पर विचार कर्त्तव्य है कि क्या मनु धर्म शास्त्र भी मृत तथा जीवितों को ही पितर मानता है?

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।
येन यैरूपचर्याःस्यु नियमैस्तान्निबोधतः ॥

जहां से इन सब (पितरों) की उत्पत्ति है और जिस से जिन नियमों से इनको पूजा कर्त्तव्य है उन सबको जानो ।

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥

हिरण्यगर्भ मनु के मरीच्यादि पुत्रों की सन्तान पितृगण हैं, और मरीच्यादि उसके पुत्र कौन है ? यह हम आगे चल कर बतायेंगे कि हिरण्यगर्भ मनु कौन है । यहां तो केवल इतना ही अवलोकन कराना इष्ट है कि मनु के मत से यह ज्ञात होता है कि वह हिरण्यगर्भ के चाहे जड़ हो वा चेतन पुत्रों के पुत्रों को पितर मानता है ।

विराटसुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीच्यालोक विश्रुताः॥

विराट के पुत्र सोमसद् संज्ञावाले साध्यों के पितर हैं और अग्निष्वात्तादि मरीचि के पुत्र देवतों के पितर हैं । इसमें साध्य भी देवगण में ही हैं । देखो अमरकोश ।

आदित्या विश्व वसवस्तुषिताभस्वरानिलाः ।
महाराजिक साध्यश्च रुद्राश्च गणदेवताः ।

...त्य शब्द से १२, विश्व १३, वसवः ८, तुषिता ३६, आभास्वरा ६४, अनिल से ४९, महाराजिक २२०, साध्या १२, रुद्रा ११ इस गणना से यह ज्ञात होता है कि ४५० गण देवताओं के माने गये हैं। मनुस्मृति के उक्त श्लोक से यह बताया गया है कि देवताओं के भी पितर होते हैं तब यह कथन कैसे बन सकता है कि मृत नर नारी ही पितर होते हैं। देवगण की अमर संज्ञा है जिसका तात्पर्य यह है कि देवगण में मृत्यु का अभाव है यदि कहो कि विनाश होने पर देवों की भी मृत्यु होगी तभी वे पितर बनेंगे ऐसा मानने में यह आपत्ति होगी कि देवों का विनाशकाल प्रलय के अतिरिक्त और क्या होसकता उस समय श्राद्धकर्त्ता का भी अभाव होगा तब श्राद्ध कौन करेगा। इसप्रकार तर्क वितर्कों से अमूल्य कालयापन करना बुद्धिमत्ता नहीं। यदि दुर्जन तोष न्याय से इस निरर्थक उट्टंकना को मान भी लें तो आगे चल कर क्या वक्तव्य होगा।

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसां।
सुपर्णां किन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः॥

दैत्य तथा, दानव एवं यक्ष, गन्धर्व और उरग तथा (सुपर्ण) एवं किन्नरो के पितर अत्रि के पुत्र बर्हिषद है। क्या इन पितरों के श्राद्धकर्त्ता उनके पुत्र पौत्रादि होंगे ऐसा कहीं देखने में तो आता नहीं। यहां आप महानुभवों को यह वक्तव्य हो सकता है कि जो व्यक्तियां वा जन्तु श्राद्ध करने में असमर्थ

हैं उनके पितरों को अन्न तथा जल से तृप्त करने का भार भी मानव मण्डल के ही अधीन है क्या यह सुध नहीं कि ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्तां तथा असुर, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष रक्षसा स्तृप्यन्तां इत्यादि वाक्य तर्पण करते समय कहे जाते हैं । प्रथम तो यह तर्पण कल्पित है यदि यह मान भी लिया जाय कि यह ठीक है। तब आगे चलकर आपको स्वयं मौन धारण करना पड़ेगा और सृष्टि की आदि से अन्त पर्य्यन्त यह सिद्ध करना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव होगा कि मृतकों कि पितर संज्ञा है। हमारा ही सिद्धान्त जो वेद विहित है विवश हो मानना पड़ेगा अस्तु आगे पधारिये ।

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणान्तु सुकालिनः ॥

सोमपा नाम के पितर ब्राह्मणों के पितर हैं हविर्भुज संज्ञा वाले क्षत्रियों के वेश्यों के आज्यपा नाम के और शूद्रों के सुकालिन संज्ञा वाले पितर हैं। इस श्लोक में पितरों को वर्णों में विभक्त कर यह बताया कि अमुक नाम वाले पितर अमुक २ वर्ण के पितर हैं।

सोमपास्तु कवेः पुत्राः हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः ।
पुलस्तस्याज्यपाः पुत्राः, वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥

से मया संज्ञा वाले कवि नामा ऋषि के पुत्र हैं और हविन्त-संज्ञा वाले अङ्गिरा के पुत्र हैं। आज्यपा नाम के पितर पुलस्त ऋषि के पुत्र हैं वसिष्ट के पुत्र सुकालिन् हैं । पाठकगण इस श्लोक से यह स्पष्ट विदित होता है कि पितर संज्ञक शक्तियां श्लोक में कहे ऋषियों के पुत्र हैं हमारे मृतक पितर नहीं।

अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यान् वर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्ताश्च सौम्याश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्।

अग्निदग्धा (सूर्य्य मण्डल निवासी) अनग्निदग्धा (चंद्र मण्डल संबधी) अग्निष्वात्ता तथा सोमपा संज्ञा वाले पितर ब्राह्मणों के पितर हैं।

यं एतेतु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्त्तिताः।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्र पौत्रा मनन्तकम् ॥

ये पितृगण जिनका वर्णन पूर्व से होता आ रहा है पितरों में मुख्य हैं इनके पुत्र पौत्र अनन्त हैं पुत्र पौत्र कहने का तात्पर्य्य यह है कि जो पिता हैं उन ही गुणों वाली शक्तियां और अनन्त हैं जिनकी गणना करना कठिन है।

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देव मानवा
देवेभ्यस्तु जंगत् सर्वंचरंस्था एवनुपूर्वशः।

ऋषियों से पितर उत्पन्न होते हैं और पितरों से देव तथा

मनुष्यों की उत्पत्ति होती है। देवतों से यह स्थावर और जंगम रचना उत्पन्न हुई है। उक्त श्लोक से यह भी विदित होता है कि पितरों का पद देवों से भी ऊँचा है जिन महानुभावों ने देव कार्य को तो सहर्ष ग्रहण किया और पितृकर्म को हेय समझा उनको इस मनुवाक्य से शिक्षा ग्रहण कर देव कार्य से भी उत्कृष्ट पितृकर्म कर्म को अपनाना उचित है यह भाव इस श्लोक से ही नहीं निकाला जाता अगले श्लोक में स्पष्ट बताया गया है।

देव कार्य्याद्विजातीनां पितृ कार्य्यं विशिष्यते
दैवंहि पितृकार्य्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥

देव कार्य्य से पितृ कार्य्य विशेष है। कारण कि पितृ कार्य के द्वारा ही देवों की वृद्धि होती है। इस श्लोक के अर्थों में से यह भी ध्वनी निकलती है कि पितृ कर्म्म के बिना देव कर्म्म करना निष्फल है रज्जु के बिना कूप से जल गृहण की इच्छा मात्र है। जो कार्य्य जिसके द्वारा होता है उसके बिना कार्य्य का अधूरा रहना ही कहा वा माना जायगा। इस श्लोक ने यह स्पष्ट कर दिया कि पितृ कार्य्य की क्रिया ही देव कार्य्य के अर्थ होती है। मनु धर्म्म शास्त्र का पितृ कर्म्म देखने से भी यही विदित हुआ कि पितर न मृतक हैं और न जीवित पितर खगोलस्थ देव गण होके अन्तरगत कुछ शक्तियां हैं। अब यह देखना शेष रहता है कि वेद का इस विषय में क्या मत है पुराण तथा स्मृतियों का मत वेदानुकूल है वा नहीं।

जिस वेद मत से पितर मृत तथा जीवित सिद्ध करने का साहस किया जाता है उस वेद का पितरों के विषय में क्या विचार है। इस पर भी विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है कारण कि सब प्रकार निश्चय हो जाने पर ही किसी विषय की सत्यता तथा असत्यता का निश्चय होना योग्य है।

पितरों के विषय में वेद मत

व्याकरोमि हविषा अहमेतौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि स्वधा कारेण पितृभ्योऽजरांकृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान् सृजामि।

अथर्व १२-२-३२

देव और पितरों के विषय में वेद का जो मत है वह इस मन्त्र में स्पष्ट तथा प्रकाशित किया गया है (अहम्) ईश्वर कहता है कि मैं (एतौ) इन देव पितरों को गुण विशेषों से (व्याकरोमि) पृथक २ रचता हूँ। मनुष्यों के ज्ञान विशेष के अर्थ (अहम्) मैं (ब्रह्मणा) वेद के द्वारा (व्यकल्पयामि) विशेष तथा कल्पना करता हूँ। (पितृभ्यः) पितरों के अर्थ (अजराम्) पुष्ट और शुद्ध क्रिया तथा (स्वधाकारेण) स्वधा शब्द के साथ करता हूँ। (हविषा) हवि तथा (दीर्घायुणा) दीर्घायु के साथ (इमान्) अत्यन्त रूप से दृष्टिगत होने वाले इन देवों को (संसृजामि) रचता हूँ।

स्वधा कारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यो दानेन राजन्ये । वशायामातुर्हेडन गच्छति ॥

अथर्व १२-४-३२

जो मनुष्य (स्वधाकारेण) स्वधाशब्द से (पितृभ्यः) पितरों के अर्थ और (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा (देवताभ्यः) देव तोको (दानेन) दान से (राजन्यः) राजा के अर्थ देता है । वह (वशायाः) जिनके पुत्रों का यश पृथित नहीं होता वह ऐसी (मातुः) माता की (हेडम्) अङ्क अर्थात् गोद को (न गच्छति) प्राप्त नहीं होता । अर्थात् विदुषियों के गर्भ को प्राप्त हो उत्तम कुलों में जन्म लेता है ।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मेधया मामद्य मेधा विनंकुरू ॥

(याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि को (देवगणाः) देवगण पितरश्च) और पितर (उपासते) उपासना करते हैं । (तथा) उस (मेधया) बुद्धि से (मामद्य) मुझ को (मेधा विनम्) बुद्धि वाला (कुरु) कर । इस मन्त्र से यह भी ध्वन्यर्थ हस्तगत होता है कि देव और पितृगण में हमारी बुद्धियो में सू० १-मत्व उत्गा न्नाकरने वाली शक्तियां भी विद्यमान हैं ।

दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि राजो रक्षिता: पितरा इषवस्तेभ्यो नमः ।

इस मन्त्र से यह ज्ञात कराया है कि (दक्षिण दिक्) दक्षिण दिशा का (अधिपतिः) स्वामी रक्षक (इन्द्रः) इन्द्र शक्ति विशेष (पितर इषवः) पितररूप बाणों से (रक्षिताः) रक्षा करता है (तेभ्यो नमः) उन बाणरूप पितरों के अर्थ नमस्कार है । मन्त्र से विदित होता कि जो इन्द्र सृष्टि की आदि से पितरों के द्वारा रक्षा करता है वे पितर भी रचना के आदिकाल ही से इन्द्र के पास होंगे ।

उदीरितामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सौम्यासः । असुय ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवंतु पितरो हवेषु ।

(अवरे) नीची गति वाले पृथ्वीतल सम्बन्धी (उदीरिताम्) ऊपर उठें (मध्यमाः) मध्यम स्थानों से (उत्) ऊँचे हों (उत्परासः) द्युलोक सम्बन्धी भी इसी प्रकार ऊपर उठें (ये) जो (सौम्यासः) चन्द्रमण्डल संबंधी (पितरः) पितर (असुम्) प्राणों को (ईयुः) प्राप्त हैं (ते) वे (ऋतज्ञाः) सत्य के बर्द्धक (अवृकाः) निरहिंसक (पितरः) पितर (हवेषु) यज्ञों में (नोऽवन्तु) हमारी रक्षा करें । इस वेद मन्त्र से यह ज्ञान कराया

कि पितरों की तीन गति हैं। एक पृथिवीतल संबन्धी दूसरे मध्यमें स्थानीय, तृतीय द्युलोक से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इन ही गतियों के आधार पर ऋषिगण ने पिता प्रपितामह वृद्ध प्रपितामह संज्ञा बांधी है ऐसा प्रतीत होता है। इसी उपदेश से यह भी ज्ञान करा दिया कि पृथ्वीतल से बँधे पितरों का सम्बन्ध द्यु लोकस्थ पितरों से है। पृथिवीतल के पितरों के प्रति जो कार्य होगा वह द्यु लोक पर्यन्त पहुँचेगा। इसीप्रकार पृथिवीतल पर होने वाला देवकार्य द्यु लोक पर्यन्त जाता है। इससे मनु का प्रमाण भी मिलता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतं सम्यगादित्यमुपतिष्ठति।
आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

भौतिकाग्नि में डाली हुई आहुति आदित्य किरणों में प्रविष्ट हो आदित्य को प्राप्त होती है। आदित्य से वृष्टि और वृष्टि से हमारे जीवन का मूल अन्न उत्पन्न है। जिस प्रकार पार्थिवाग्नि में किया कार्य द्यु लोक गामी होकर हमारे जीवन का सहायक माना वा कहा गया है। इसीप्रकार पृथिवीतल पर श्राद्ध पितृ कर्म भी हमारे जीवन का एकमात्र आश्रय है।

अयि भ्रातृवर्ग पूर्व के समस्त लेख के अवलोकन से आप को यह स्पष्ट ज्ञान होगया होगा कि हमारा यह विचार कि पितर मृतक जीव होते हैं भ्रांतियुक्त है इस मन्तव्य का समर्थन न वेद

करता है और न स्मृतिपुराण ही इससे सहमत हैं। पुराणों में बताये पितर भी सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुए और स्मृति में कहे अनुसार पितर दश संख्या वाले मरीच्यादि ऋषियों के पुत्र हैं यह भी स्मरण रहे कि ये ऋषि भी सृष्टि की आदि में ही उत्पन्न हुए सिद्ध होंगे। वेद कथन की शैली पर ध्यान देने से भी यही प्रतीत होता है कि पितर सृष्टि रचना के साथ ही उत्पन्न हुए।

वेद ने इस अनेक तारागण के समूह खगोल को दो भागों में विभक्त कर यह बताया है कि इन दोनों भागों में दक्षिण भाग का नाम पितृयान और उत्तरीय भाग का नाम देवयान हैं। पितृयान में पितरों का प्राधान्य और देवयान में देवों का। रचना उत्पत्ति और रक्षा पितरों के आधीन है और प्रकाश तथा जीवन के दाता देवगण हैं। वेद के इस कथनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जब से रचना है तभी से ये दोनों शक्तियां भी हैं। इतने स्पष्ट कथन के द्वारा हमें यही मानना उचित है कि पितर न मृतक हैं और न जीवित पितर हमारे जीवन का एक मात्र आश्रय है और उन के अर्थ जो कर्त्तव्य हमें बताया गया है सहर्ष कर्त्तव्य है।

पाठकगण यह सिद्ध होजाने पर कि पितृकर्म एक कर्त्तव्य कर्म्म है किन्तु बिना इस के जाने कि इन से हमारा संबन्ध क्या और किस प्रकार है विद्वानों की बुद्धियों में बैठना कठिन है। इस कर्म्म को वेदादि शास्त्रोंमें कर्त्तव्य तो बताया गया है किन्तु उसके हेतु का वर्णन नहीं पाया जाता। इस का कारण यह प्रतीत होता

है कि वह काल श्रद्धा और विश्वास का था उस समयकी जनता विद्वानों के कथन पर कार्य्य करना अपना कल्याण समझती थी सम्प्रति जनता सतर्क हेतु कहे बिना आज्ञा पालन की अभ्यासी नहीं है। अतएव सतर्क हेतु बताना इसलिये आवश्यक हुआ।

पाठकगण वैदिक मतावलम्बी ऋषिगण ने वेदोंके अवगाहन से इस अनेक रूप रचना की उत्पत्ति के दो ही कारण माने हैं वे दोनों परस्पर विरोधी हैं। जिनमें एक शीत और द्वितीय उष्ण है। यह जो कुछ भी स्थावर और जंगम रचना मूर्त्त और अमूर्त्त रूप से स्थित है शीत और उष्ण इन ही का कार्य्य प्रतीत होती है। इस विषय में आयुर्वेदाचार्य्य धन्वन्तरि ऋषिवर का यह मत है:—

लोकोहि द्विविधः स्थावरो जंगमश्च।
द्विविधात्मक एवाग्नेयः सौम्यश्च॥

यह स्थावर और जंगम रचना शीत और उष्ण इन दो गुण वाली है।

अथ कवन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ।
भगवत् कुतो हवा इमाःइमाःप्रजाः प्रजायन्त इति॥

प्रश्नोपनिषत्

कबंधी और कात्यायन ऋषियों ने पिप्पलादि ऋषि के

समीप जा कर यह प्रश्न किया कि हे भगवन् यह समस्त प्रजा किससे उत्पन्न होती है।

तस्मैसहोवाच प्रजा कामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत। तपस्तप्त्वा स मिथुन मुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्चे त्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।

प्रश्नोपनिषत्

पिप्पलाद ऋषि ने उनके ज्ञान के अर्थ कहा कि प्रजा की इच्छा से प्रजापति तप करता हुआ। तप करने के पश्चात् दो वस्तु उत्पन्न कीं एक रयि और द्वितीय प्राण, और कहा कि इन दोनों से ही मैं बहुत सी प्रजा करूंगा। इस रयि और प्राण शब्द की व्याख्या ऋषि अगले वाक्य से स्वयं ही करते हैं।

आदित्योह वै प्राणो रयि रेव चन्द्रमाः। रयिर्वा एतत् सर्वं मन्मूर्त्तं चामूर्त्तञ्च तस्मा न्मूर्त्ति रेवरयिः॥

सूर्य्य प्राण और रयि चन्द्रमा है। जो कुछ यह मूर्त्त और अमूर्त्त जगत् रयि हैं तात्पर्य्य इस वाक्य का यह है कि उष्ण स्वभाव सूर्य्य और शीत स्वभाव युक्त चन्द्रमा है। दोनों आचार्यों के मन्तव्य में भेद नहीं केवल शब्दों का ही भेद है। ऋषि वरों का यह मत केवल अपनी ही कल्पना नहीं प्रभु की रचना

के अनुकूल ही है क्या यह हमसे अप्रकट है कि यह रचना ऋषियों के मत को पुष्ट रूप से पुष्ट करने के अर्थ अहर्निश सम-ऋद्दष्टिगत होती है। प्रथम इस अहर्निश पर दृष्टिपात करके देखना योग्य है। दिन यदि प्रकाश है तो उसकी विरोधिनी रात्रि अन्धकार युक है। मास का एक पक्ष शुक्ल है तो उसके समक्ष में उसका विरोधी कृष्ण पक्ष उपस्थित है। वर्ष के दोनों अयन उत्तरायण दक्षिणायन भेद से परस्पर विरोधी हैं। इसके अतिरिक्त प्रभु की रचना का अवलोकन करने पर भी यही विरोध दृष्टिगोचर होता है। प्रथम दिग विभाग पर ही दृष्टिपात करके देखने की आवश्यकता है। पूर्व दिशा का स्वामी अग्नि माना जाता है तो उसका विरोधी पश्चिम दिशा का स्वामी वरुण है। सोम को उत्तर दिशा का स्वामी कहते हैं उसका विरोधी स्वभाव इन्द्र दक्षिण दिशा का उष्ण स्वामी बताया गया है। द्युलोक उष्ण स्वभाव है तो उसकी पाद स्थानी पृथिवी शीत स्वभाव वाली मानी गई है। हमारे शरीर की उत्पत्ति के कारण रज और वीज भी परस्पर विरोधी कहे गये हैं। मनुष्य का वीज यदि सौम्य है तो स्त्री का रज आग्नेय माना गया है। इस स्थावर तथा जंगम रचना की छान बीन करने पर यही हस्तगत होता है कि यह शीत और उष्ण इन्हीं दोनों वीजों के द्वारा रची गई है इस रचना विशेष का अवगाहन करने के पश्चात् ही ऋषिवर धन्वरि और पिप्पलाद महाशय ने अपना मत स्थिर करा है ऐसा प्रतीत होता है।

पाठकगण रचना का परस्पर विरोध हमें शिक्षा देता है कि परस्पर विरोधी पदार्थों के वृद्धि और ह्रासकर्त्ता भी विरोधी होते हुए ही उन की वृद्धि और क्षय का कारण होंगे।

पाठकवर्ग को यह विदित होना भी आवश्यक है कि हमारा शरीर बड़े ब्रह्माण्ड की छोटी प्रतिकृति है जैसे हमारे शरीर में पृथिवी जल तेज वायु आकाश कार्य करते हैं और इनकी साम्यता शरीर की स्थिति का मुख्यतम कारण है,इसी प्रकार इस बड़े ब्रह्माण्ड को भी जानो। इस बड़े ब्रह्माण्ड में जिसका अधिपति सूर्य है यही पांचों तत्व कार्य करते हैं। उक्त पांचों तत्वों की यथासमान स्थिति इस ब्रह्माण्ड की कि जिसमें असंख्यात जीवों का वास है स्थिति का कारण है।

पाठकगण आपको पूर्व के लेख से यह भलीभांति विदित होगया होगा कि यह रचना दो विरोधी पदार्थों का ही कार्य है। जिस प्रकार रात्रि दिवस और दिशाओं में परस्पर विरोध विदित होता है इसी प्रकार देव और पितरों में भी दृष्टिगोचर होता है। अवलोकन करने की कृपा करें। देवों का कार्यकाल पूर्वाह्न और पितरों का अपराह्न। देव दिन के स्वामी हैं और पितर रात्रि के। देवोंका पक्ष शुक्ल और पितरोंका कृष्ण। देवोंका संबंध उत्तरायण से है तो पितरों का दक्षिणायण से माना गया है।

देवों की दिशा उत्तर और पितरों की दक्षिण। देवों का भोजन शीत और पितरों का उष्ण है। देवों में प्रकाश का प्रधा-

सत्व है तो पितरों में अन्धकार का। देव कार्य्य के अर्थ शुक्लपक्ष पौर्णिमा कही गई है तो पितरों के अर्थ कृष्णपक्ष और अमावास्या है।

पाठकगण यद्यपि यह परस्पर विरोध है किन्तु यह विरोधही दोनों प्रकार की रचना का जीवन मूल है। इन उक्त दोनों विरोधी पदार्थों को यथामान और शुद्ध रखना सृष्टिकर्त्ता को इष्ट है यदि विचार कर देखा जाय तो इनको यथामान और शुद्ध रखने के अर्थ ही इस खगोल का नित्य भ्रमण हो रहा है।

भ्रातृवर्ग प्रत्यक्ष के अर्थ प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। क्या यह हमसे अप्रकट है कि आये दिन ऋतु अपने प्रभाव से इन शीत और उष्ण सृष्टि के दोनों बीजों की साम्यावस्था करके हमारे जीवन का एक मात्र आश्रय है इस परिवर्त्तन में पूर्णतया तो परमपिता परमात्मा का हाथ है बहुत न्यून कार्य्य मानव मण्डल के अधीन है क्या यह हम नहीं देखते कि हमारे जीवन के अर्थ जिन २ पदार्थों की आवश्यकता है अनायास नित्य हम को प्राप्त होतेहैं। पाठकगण जगत् पिता परमात्माने हमारे जीवन के परमोपयोगी वर्षादि अपने अधीन रख हमें कितना स्वतन्त्र किया है जिन कार्यों में मानव मण्डल को असमर्थ जाना उन सब का भार प्रभु ने अपने ऊपर थोपा जिन कार्य्यों में मानव मण्डल का समर्थ जाना उतने कार्य्य की आज्ञा मानव मण्डल को दी है। हमारे जीवन के अर्थ जितनी आवश्यकता अंधकार और प्रकाश

तथा शीत और उष्णादि की है उसे नित्य पूर्ण करने के अर्थ सूर्य भगवान और रात्रि देवी निरन्तर करते हैं। हमारे अधीन उतने ही किये गये हैं जिनसे हमारा संबन्ध है।

पाठकगण आपको यह भी विचारना योग्य है कि देव कार्य्य और पितृ कार्य्य इन दोनों से सम्बन्ध किसका है हमें यह अभिमान न करना चाहिये कि हम इन कार्य्यों के द्वारा ब्रह्माण्ड की रक्षा कर रहे हैं। यह अभिमान हमारा वृथा है जीवों पर करुणा कर प्रभु ने इन कर्म्मों की आज्ञा मानव मण्डल को अपने ब्रह्माण्ड की रक्षा के अर्थ नहीं दी। मानव मण्डल की ही इसमें भलाई है।

पाठकगण आप यह तो विचारें कि इतने बड़े ब्रह्माण्ड की रक्षा हम पामर किस उपाय के द्वारा कर सकते हैं। वस्तुतः ये दोनों कार्य हमारी ही रक्षा विशेष के अर्थ हैं। इन कृत्यों का सम्बन्ध विशेष हमारे गृहों से है जिनमें हम नित्य निवास करते हैं। इन कर्म्मों का विधान प्रायः गृह्य सूत्रों में पाया जाता है।

गृहाय हितं गृह्यम्

गृहों के हितकारी कार्य्यों का वर्णन होने से ही इन ग्रन्थों का गृह्य सूत्र नाम पड़ा है। पितृ कर्म्म का विधान भी गृह्य सूत्रों में पाया जाता है इससे यह ज्ञात होता है कि पितृ कर्म्म हमारे निवास के स्थानों के ही हितार्थ है।

पाठकगण क्या यह बात तो विदित नहीं कि जिन गृहों में हम नित्य निवास करते हैं वे विशेषतया अंधकारावृत रहते हैं

उनकी शुद्धि के अर्थ पितृ कर्म्म की आवश्यकता है इसी हेतु से गृह्य सूत्रों में इस पितृ कर्म्म का वर्णन है।

पाठकगण अब तक जो कुछ कहा गया उससे यह भलिभांति विदित होगया होगा कि पितृ कर्म्म देव कर्म्म से भी अधिक कर्तव्य है किन्तु न जाने किस काल से यह कृत्य इस रूप से होना आरम्भ हुआ कि जनता अपने धन और काल का दुरुपयोग करने पर भी इसके उस फल से कि जिस आशय से ऋषिवरों ने इसे वेद विहित बताया था वंचित ही रही। विद्वान् मण्डल ने भी इसके तत्व स्वरूप को अपने वाक् जाल से ऐसा आछादित करा कि बड़े २ विचार शीलों को भी खोज न मिला। इसी कारण यह कार्य्य अद्यावधि अपने स्वरूप को प्राप्त न कर क्रीड़ा मात्र ही होता चला आ रहा है।

वाचकवृन्द यह भी आपको जानना आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तुके साथ दो बातोंका संबन्ध होता है। एक नाम और दूसरा स्वरूप का। बिना स्वरूप ज्ञानके केवल नामसे कार्य्य नहीं होता हमारे लेख में जिन पितरों और देवों का वर्णन है उनका नाम तो कर्णगोचर होता है किन्तु स्वरूप का नहीं। जब तक उक्त दोनों देव और पितरों के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न होगा तब तक न तो विचारशीलों की बुद्धि ही इसको स्वीकार करेगी और न कार्य्य सिद्धि की सम्भावना है। पुराकाल के विचारशील सज्जनोंने देव और पितरों के स्वरूप को अपने वाकजाल में ऐसा छिपाया कि

स्वप्नमें भी यथार्थ स्वरूपका दर्शन दुर्लभ होगया। यथार्थ स्वरूप के दृष्टिगोचर न होने का कारण वेद के पठन पाठन का अभाव है। वेद ने जिनको देव और पितर बताया है, वस्तुतः उन ही देव और पितरों के अथ कार्य्य करने से कार्य्य सिद्धि होनी संभव है। जिनको हमने देव और पितर मान रक्खा है वे वेद विरुद्ध होने से न कार्य्य साधक हैं और न देव और न पितर हैं। हम ने जिन को देव और पितर माना है उन का नाम तो श्रवण होता है किन्तु स्वरूप का अभाव ह। वेद में जिन को देव और पितर कहा गया है उनका नाम और स्वरूप दोनों विद्यमान हैं। अवलोकन करने की कृपा कर।

हमारी परिडत मण्डली ने भारत की जनता के चित्तों में यह विचार बैठा दिया है कि यावती पाषाण तथा काष्ठ धातु आदि की निर्मित मूर्तियां हैं यही देवता हैं और हमारे मृतसम्बन्धी सब पितर हैं। परिडतमंडल के इसी वाक्‌जाल ने देव और पितरों के यथार्थ ज्ञान से जनता को वंचित रक्खा।

वेदोक्त देवता

वेद ज्ञाता ऋषियों ने देवता शब्द का निर्वचन भी वेद के अनुकूल ही करा है इस निर्वचन पर ध्यान देने से यह प्रत्यक्ष होता है कि वस्तुतः यह निर्वचन वेद कथित देवताओं से तो मेल खाता है हमारी मानी हुई मूर्त्तियों में यह निर्वचन नहीं घटता।

निरुक्त में यास्क मुनि ने देवता शब्द का निर्वचन निम्न प्रकार किया है।

दानाद्दीपनात् द्योतनात् द्युस्थाने भवतीति देवः

देव एक देवता।

(दानात्) दान देने से (दीपनात्) उत्तेजित करने और (द्योतनात्) प्रकाशित होने तथा (द्युस्थाने भवतीति देवः) द्युलोक में स्थित होने के कारण देवता कहते हैं। इस निर्वचन से वेद कथित देवताओं की संगती होती है हमारे कल्पितों की नहीं।

वेदमें भी उक्त गुणोंवाली शक्तियोंको ही देवता कहा गया है।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता। आदित्यो देवता। मरुतो देवता। विश्वे देवा देवता। बृहस्पतिर्देवता। इन्द्रो देवता। वरुणो देवता।

इनही वेदोक्त देवतों की कृपा से स्थावर तथा जंगम रचना की स्थिति है। जिस काल से उक्त देवों का पूजन जनता ने त्यागा तभी से भारत में दिन प्रति दिन दरिद्र का आक्रमण हो रहा है। इन देवों को जनता का प्राण ही समझना चाहिये। कारण कि जनता का जीवन इनही के द्वारा हो रहा है। इनके साथ जिस प्रकार व्यवहार करने की आज्ञा वेदों के द्वारा परम

पिता परमात्मा ने हमें दी थी सम्प्रति जनता में उसका नितान्त अभाव है।

वेद के ज्ञाता श्री कृष्णचन्द्र भगवान ने देवों और जनता के परस्पर सम्बन्ध को जाना और अपने परमोत्तम उपदेश गीता में बड़े गौरव के साथ वर्णन किया। गीता अध्याय तीन में देव और जनता के सम्बन्ध के विषय में भगवान् कृष्णचन्द जी योगी राज कहते हैं कि—

सह यज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वम् एष वोस्त्विष्ट कामधुक्॥

यज्ञ नाम विष्णु का है और विष्णु शब्द से यहाँ सूर्य का ग्रहण है तात्पर्य यह है कि सूर्य भगवान् के साथ इस प्रजा को रचकर ब्रह्मा ने कहा कि यह तुम्हारी समस्त इष्ट कामनाओं के पूर्ण करने के अर्थ है तुम इसके साथ अपनी वृद्धि करो।

देवान् भावयतानेन तेदेवा भावयन्तुवः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवास्यथ॥

इसके द्वारा देवों की वृद्धि करो अर्थात् उन के बल का ह्रास न होने दो। वे यज्ञ भावित देव तुम्हारी वृद्धि तथा शुद्धि का साधन होंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे की वृद्धि करते हुए परम कल्याण का कारण होगा।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।

यज्ञ के द्वारा वृद्धि हुए देव गण तुम्हारे (प्रजा के) इष्ट भोगों को देने वाले होंगे।

श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने जिन देवों के साथ जनता का सम्बन्ध बताया है उनही देवों का पूजन यज्ञ द्वारा होने से अपने कल्याण की इच्छा करनी उचित है अन्यों में देव भावना करना भ्रान्ति ही कही जायगी।

दैवाधीनं जगत् सर्वम्

इस वाक्य से भी विदित होता है कि यह समस्त जगत् देवों के अधीन है।

उक्त देवगण अनेक रूपों से जगत् का पालन करते हैं। यद्यपि इस ब्रह्माण्ड में सम्राट रूप से सूर्य ही सब का धर्त्ता हर्ता है किन्तु और भी बहुत हैं जिनके द्वारा जगत में अनेक कार्य्य होते हैं कोशकारों ने देव गण की दश योनियां निम्न प्रकार मानी हैं:—

विद्या धरोऽप्सरो यक्ष रक्षो गंधर्व किन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देव योनयः॥

इनके नामों से यह विदित होता है कि ये अपने २ नामों के अनुकूल ही कार्य्यों के कर्त्ता हैं।

पितरों का वास्तविक स्वरूप

इनहीं देवगण में से मरुतगण विशेष जिनके द्वारा जगत् की उत्पत्ति स्थिति और पालन होता है उनकी पितर संज्ञा है पितर

शब्द बहु बचनान्त होने से यह बताता है कि पितर संज्ञक शक्तियां बहुत हैं ।

यह मरुत्गण उनन्चास करोड़ माने गये हैं यदि गम्भीर विचार के द्वारा देखा जाय तो जिन देवगण के द्वारा हमें परम उपकार बताया गया है उस उपकार को देवगण बिना मरुतगण की सहायता के करने में असमर्थ हैं । जनता का जो कुछ भी सम्बन्ध देवगण का है उसमें मरुत गण का ही हाथ है कारण कि ऋषिगण ने ऐसा ही कहा है ।

पृथिवी पूर्वरुपम् द्यौरुत्तर रुपम् । आकाशः सन्धि वायुः सन्धानम् । तैत्तरीय उपनिषत् ॥

अध स्थानी पृथिवी और उर्ध्व स्थानीय सूर्य इन दोनों की सन्धि का कारण आकाश है और उस सन्धि को सदैव जुटाये रखने का कारण वायु है।

हमारे दिये को देवगण पर्यन्त पहुंचाना और देवगण से जो हमारे समीप आता है उसको हम तक पहुंचाना जनता और देवगण के इस नियम में मरुतगण का ही प्राधान्य माना गया है।

इसी मरुतगण की जिसकी संख्या पूर्व ४९ करोड़ कह आये हैं पितर संज्ञा है जिनको वेद भगवान् ने इन्द्र का वाण कहा है इन का निवास स्थान विशेषतया दक्षिण दिशा है।

पाठकगण जिस मरुतगण की पितर संज्ञा कह आये हैं इस

में यह वक्तव्य विशेष रहता है कि यह मरुतगण कार्य्य विशेषों से समस्त ब्रह्माण्ड में विभक्त हैं दिशाओं का स्वामित्व मरुतगण को प्राप्त होने से सभी दिशाओं में मरुतगण निवास करते हैं समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त मरुतगण में से चन्द्रमण्डल संबधी और विशेषतया दक्षिण दिशा निवासी मरुतगण की ही पितर संज्ञा है ऐसा जानना उचित है ।

अब यह कहना शेष रहता है कि जिन पितरों की उत्पत्ति का वर्णन मनु में आया है क्या वे पितर ये ही हैं।

इस विषय पर विचार करने से यह विदित होता है कि मनु इन्हीं दक्षिण दिशा के स्वामी पितरों के अर्थ श्राद्ध की आज्ञा देता है। मनु धर्म्म शास्त्र में पितरों की उत्पत्ति के विषय में यह स्पष्ट कहा गया है कि पितरों के जनक ऋषि हैं अब हमें यह खोजना है कि जिन ऋषियों के पुत्र पितर हैं ये ऋषि कौन हैं जड़ हैं वा चेतन।

इस बात के निश्चय करने के अर्थ कि ऋषि कौन है किसी अन्य शास्त्र की शरण लेने की आवश्यक्ता नहीं। मनु धर्म्म शास्त्र ने इस विषय का निपटारा भी स्पष्टतया कर दिया है ।

पाठकगण आप पूर्व यह पढ़ आये हैं कि मनु ने इन ऋषियों को कि जिनके पुत्र पितर हैं हिरण्यगर्भ का पुत्र कहा है इस कथन से स्पष्ट ज्ञान होता है कि ऋषि हिरण्यगर्भ संज्ञक मनु के पुत्र हैं अब यह खोज करने से इष्ट सिद्धि होना सम्भव है कि यह हिरण्य गर्भ मनु कौन है।

मनु शब्द काल का वाचक माना गया है किन्तु यहां मनु का विशेषण हिरण्य गर्भ है हिरण्यगर्भ विशेषण होने और काल नियामक तथा जाग्रति उत्पन्न करनेसे स्पष्टतया सूर्य का ग्रहण है।

इस से यह ज्ञान होता है कि मरीच्यादि दश संख्या वाले ऋषि पितरों के जनक सूर्य्य के पुत्र हैं।

ऋगेतौ धातु से ऋषि शब्द बना है तात्पर्य्य इसका यह है कि जिसकी गति अव्याहत हो और सर्वत्र व्याप्त हो उसको ऋषि कहते हैं। इन लक्षणों से युक्त पञ्चतत्वों के अन्तर गत वायु ही दृष्टिगत होता है। मरीच्यादि नाम वाले दश ऋषि सूर्य्य के पुत्र हैं यहां पिता पुत्र कहने से यह तात्पर्य्य हस्तगत होता है कि एक शक्ति से उत्पन्न होने वाली द्वितीय शक्ति की पुत्र संज्ञा है। जिन ऋषियों के पुत्र पितर हैं वस्तुतः वह वायु हैं। बहुत से प्रमाणों तथा युक्तियों से यही सिद्ध होता है।

यह तो सिद्ध हो गया कि जगत् की उत्पत्ति का कारण सूर्य के पुत्र ऋषि हैं, उपनिषत् कारों का मत है कि यद्यपि तत्व पाँच हैं किन्तु रचना करने में वायु भगवान् ही प्रधान माने गये हैं। तत्वों का कार्य्य कहते हुए एक उपनिषत्कार का मत है कि-

यत् कठिनं सा पृथिवी। यद्द्रवं तदापः (तास्प्राणः)। यदुष्णं तत्तेजः। यत् संचरति सवायुः। यच्छिरम् तदाकाशम्॥

कठिनत्व पृथिवी और द्रवता जल है। उष्णत्व तेज और गमन शक्ति वाला वायु है। छिद्र आकाश को मानना चाहिये।

तत्र पृथिवी धारणे आपः पिण्डी करणे तेजः प्रकाशने। वायु व्यूहने। आकाश मेवा काश प्रदाने॥

पृथिवी केवल धारण करने और जल पिण्डाकार करने वाला है। उष्णता का कार्य प्रकाश और द्रव्यों को परिपक्व करना है। पदार्थ मात्र की रचना वायु कहा कि रचना का आरम्भ जहां से होता है वह कार्य्य वायु का है।

आकाश केवल अवकाश के अर्थ है।

दोनों आचार्यों के मत से यह सिद्ध होता है कि रचना विशेष में पवन देव ही का प्राधान्य है। मनु ने यह कहा है कि रचना का आरम्भ ऋषियों से होता है उपनिषद्कार ने रचनामें मुख्यतया वायु को कहा है। आशय यह निकलता है व लोक व्यवहार में भी यही देखा जाता है। पांच तत्वों में चार तत्व स्थिर है चलन शक्ति वायु भगवान ही में दृष्टिगत होती है यदि और गम्भीर विचार द्वारा देखा जाय तो यह सिद्ध होता है कि स्थिर चार तत्वों के संचालक भी भगवान् पवन देव ही हैं एक के गुण को द्वितीय में प्रवेश करना वायु देव ही के अधीन है परमात्मा ने

हमारे जीवन का मुख्य कारण प्राण भी पवन देव ही के कर कमलों में दिया है ।

बड़ा कार्य किसी महान् शक्ति के ही द्वारा होता है । यदि और गम्भीर विचार करके अवलोकन करें तो जिस सूर्य के अधीन समस्त ब्रह्माण्ड माना जाता है वह सूर्य भी अपनी धुरी पर नित्य भ्रमण इन्हीं वायु देव के द्वारा करता है ब्रह्माण्ड के लोकलोकान्तर भ्रमण करते हैं किन्तु भ्रमण कराना वायु के ही द्वारा होता है मनु के ऋषि वायु ही हैं ।

जिन दश संख्या वाले ऋषियों को हमने वायु माना है यह हमारी निजि कल्पना नहीं पुराचार्यों ने भी इनको वायु ही माना है ।

वर्त्तमान काल में ऐसा कौन व्यक्ति है जो श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द योगीराज से अपरिचित होगा । जिनके विषय में सनातनी और आर्य दोनों का विचार है कि उक्त महाशय एक महा पुरुष थे । केवल अन्तर इतना है कि एक पक्ष कहता है कि वे साक्षात् ब्रह्म का ही अवतार थे, आर्य सज्जनों का विचार है कि मोक्ष से लौटे हुए कोई महात्मा थे परस्पर के इस विवाद को यदि छोड़ दिया जाय तो यह कहने में किसी को भी संकोच न होगा कि सर्वगुण सम्पन्न और वेदों के अद्वितीय ज्ञाता थे ।

तात्पर्य यह है कि श्री कृष्णचन्द्र के उपदेशों से दोनों पक्षोंको

सहानुभूति है। श्री कृष्णचन्द्र योगीराज ने भी इन दश संख्या वाले ऋषियों को वायु ही माना वा कहा है।

मरी चिर्मरुतामस्मि

श्री कृष्णचन्द्र कहते हैं कि मारुतों (पवनों) में मैं मरीचि हूँ एक मरीचि के पवन कहने से अन्य भी पवन ही ठहरेंगे कार्य विशेष से संज्ञा पृथक् २ हैं।

अब इस विषय में कि मनु ने ऋषियों को रचना का हेतु माना और उनको ऋषि कह कर पुकारा है मनु तथा उपनिषत्कार एवं श्री कृष्णचन्द्र योगीराज की साक्षी से वे वायु सिद्ध हुए। यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि वेद मन्त्र द्वारा यह बताया गया है कि पितर तीन संज्ञाओं में विभक्त किये गये हैं जिसका तात्पर्य यह है कि वायु तीन प्रकार का है स्थूल सूक्ष्म और सूक्ष्मतर।

भूमण्डल से संबन्ध विशेष वाला स्थूल और मध्यम लोक अर्थात् अन्तरिक्ष निवासी सूक्ष्म और सूर्य मण्डल के साथ रहने वाले सूक्ष्मतर है। सूक्ष्मतर ऋषि और अन्तरिक्ष तथा भूतल सम्बन्धी पितर संज्ञक है।

यह सिद्ध हो जाने पर कि ऋषि संज्ञक दश संख्या वाले सूर्य के पुत्र मरुद्गण का ही एक वर्ग है और वह वायु है फिर इस में सन्देह को अवकाश किस प्रकार हो

सकता है कि पितर वायु नहीं। अब हमको यह मानना बलात् हो गया कि ऋचा के कर्त्ता सूर्य के पुत्र ऋषि हैं और वे वायु हैं तो क्या उनसे उत्पन्न होने वाले उनके पुत्र वायु नहीं थे सृष्टि क्रम पर दृष्टि पात करने पर यही विदित होता है जो जाति पिता की होती है पुत्र भी उसी जाती का होना चाहिये मनुष्य से मनुष्य और पत्ती तथा पशु से पशु की ही उत्पत्ति होती है इसी प्रकार जब पिता वायु है तो पुत्र भी वायु ही ठहरेंगे। और इन पितरों के पुत्र पौत्र भी वायु ही रहेंगे। वायु ही ब्रह्माण्ड के धारण तथा सृष्टि की अनेक प्रकार उत्पत्ति का कारण है पिता प्रपिता अरु प्रपितामह आदि संज्ञा ये इनकी ही बन सकती हैं।

वायु के महत्व और कार्यों के विषय में

आयुर्वेदाचार्यों का मत

अव्यक्तो व्यक्त कर्मा नरूक्षः शीतो लघुखरः।
तिर्य्यग्गोद्विगुश्चैव रजो बहुल मेव च ॥
अचिन्त्य वीर्य्यो दोषाणां ... ग समूह राट्।
आशुकारी मुहुश्चारी पक्वा धान गुदा लयः ॥
शुश्रुतनिदानस्थान्।

वायु अव्यक्त है किन्तु कर्म इस के वृक्षादि कम्पन व्यक्त (प्रकट) हैं। स्वभाव इस का शीत लघु और खर है।

तिर्य्यक तिरछा चलता है। शब्द और स्पर्श इन दो गुणों से युक्त रजोगुण विशेष वाला है । इस का बल अचिंत्य है । शरीरस्थ कफ पित्त आदि दोष तथा धातुओं का नेता है। रोग समूहों का राजा कार्य्य शीघ्रता से करने वाला बार बार गति युक्त शरीर में पक्वा धान तथा गुदा स्थान में विशेषता से रहता है ।

शुश्रुताचार्य्य ऋषिवर धन्वन्तरि कथित वायु के गुणों के अवलोकन से यह विदित होता है कि ये गुण शरीरों में कार्य्य करने वाले के हैं। चरकाचार्य्य अग्नि ऋषिने शरीरस्थ और ब्रह्माण्डस्थ दोनों पर विचार किया है । इस विषय में चरक के कर्त्ता आत्रेय मुनि का मत निम्नलिखित है :—

आयुर्वायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदं सर्वम् प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ॥
अव्याहत गतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।
वायुर्हि सोऽधिको जीवेत् नीरोगः शरदां शतम् ।
चरक सूत्र स्थान् ॥

(वायुर्वायुर्बलंवायु) वायु ही आयु और वायु ही बल है । (वायुर्धाता शरीरिणाम) शरीर धारियों का धारक भी वायु ही है । (वायुर्विश्वमिदंसर्वम्) यह समस्त जगत वायु ही है । (प्रभुर्वायुश्चकीर्तितः) प्रभु भी वायु ही कहा गया है। (अव्याहत

गतिर्यस्य) जिस वायु की अव्याहत गति है (स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः) जिसका वह अपने स्थान में तथा प्रकृति से स्थित रहे तो (सोऽधिकं जीवेत्) वह अधिक जीवै। (नीरोगः शरद्शतं) और सौ शरद ऋतुओं पर्य्यन्त नीरोग रहे। यह गुण तथा कार्य शरीरों में रहने वाले वायु के समझने चाहिये।

पाठकवर्ग को यह भी विदित हो कि आयुर्वेद विदों ने आयु को दो प्रकार का माना वा कहा है। एक विकृत और द्वितीय प्रकृतिस्थ निम्नलिखित गुण वा कार्य उस वायु के हैं जो प्रकृतिस्थ रहता हुआ ब्रह्माण्ड में विचरता है।

तद्यथा धरणी धारणम् । ज्वलनो ज्वालनम् ॥ आदित्य चन्द्र नक्षत्र ग्रह गणानां सन्तान गतिर्वेधानम् । सृष्टिश्च मेघानाम् ॥ अपाञ्च विसर्गः । प्रवर्त्तनञ्चस्रोतसाम् ॥ पुष्प फलानाञ्च निर्वर्त्तनम् ॥

उद्भेदनञ्चोद्भिदानाम । ऋतुनां प्रविभागः । विभागोधातुनाम् । धातु मानसंस्थान व्यक्तिः । वीजाभि संस्कारः । शस्याभिवर्द्धनम् । विक्लेदोप शोषणम् । वैकारिक विकारञ्चेति ।

जब यह वायु विकार रहित और शुद्धरूप से ब्रह्माण्ड में विचरता है तब यह निम्न लिखित कार्यों को करता है। पृथिवी का धारण और अग्नि को प्रज्वलित करता है। सूर्य चन्द्र तथा नक्षत्र और ग्रहों को यथास्थान रख कर भ्रमण कराना। मेघों की रचना और जलों को छोड़ना। पृथिवी तथा पर्वतों से श्रोतों का चलाना। पुष्पों को विकसित कर फलों को लाना वृक्षांकुरों को उगाना और यथासमय ऋतुओं को लाना। पृथिवी पर्वतों तथा नदियों में स्वर्णादि धातुओं का मान तथा विभाग और पृथक पृथक करना। वपन हुए बीजों को उगाना कृषि की वृद्धि करना। जल से उत्पन्न कर्दम का शोषण उक्त कार्य शुद्ध और प्रकृतिस्थ वायुदेव के कहे गये हैं।

विकृत वायु के कार्य्य

प्रकुपितस्य खल्वस्य लोकेषु चरतः कर्म्माणी मानि भवन्ति। तद्यथा शिखरि शिखराव मथनम्। उन्मथन मनोक हाना मुत्पीडनम्। सागराणामुद्वर्त्तनम्। सरसां प्रति सरणम्। आपगानाञ्च्यनञ्च। भूमे रवधूनम्। अम्बुदानां निहार निर्हादपांसु सिकता मत्स्यभे कोरग रुधिराश्माशनि विसर्गो व्यापादनञ्च। षण्णा मृतूनां शस्यानामसंघातो भूतानाञ्चोपसर्गो भावानाञ्चाभाव

करणाम् । चतुर्युगांतकराणां मेघ सूर्य्या निला नलानां विसर्गः ।

पर्वतों की शिखरों को खण्ड करना । और वृक्षों को समूल उखाड़ना । समुद्रका उत्पीडन (तूफान) करना । झील तथा सरोवरों में तरंगों को उठाना । नदियों का स्रोतान्मुख करना और भ्रमरों को डालना । भूकम्प और बिना वर्षा वा मेघों के भी आकाश में भयंकर शब्दों का होना । कुहरा बालू और धूलि एवं मछली मेंडक सूर्य तथा क्षार रुधिर और पत्थर एवं विद्युत् आदि का पात ऋतुओं में विकार उत्पन्न करना । शास्त्र में विकार वा सर्वथा नष्ट करना । महामारी आदि रोग वा विद्यमान वस्तुओं का विनाश करना । चतुर्युगों का अन्त (प्रलय) करना । अग्नि सूर्य और मेघ तथा अपना भी विनाश करना । उक्त कार्य भी वायुदेव के ही द्वारा हो हैं ।

आयुर्वेद विदों ने प्रकृतिस्थ वायु को भी सामान्य

और विशेष भेद से दो प्रकार का माना है

उनमें से सामान्य के कार्य्य

सहिभगवान् प्रभवश्चाव्ययश्च । भूतानां भावाभावकरः । सुखा सुखयो र्विधाता । मृत्यु र्यमः । नियन्ता । प्रजापति रदिति र्विश्वकर्म्मा ।

विश्वरुपः सर्वगः । सर्व तन्त्राणां विधाता । भात्रामोमणुर्भिर्भुरणुः क्रान्ता लोकानाम् । वायुरेव भगवानिति ।

समान ऐश्वर्य्यवान् । उत्पत्ति का हेतु और अविनाशी है । भूतों का भाव अभाव करता । सुखों तथा दुःखों का धा क । मृत्यु का नियामक तथा नियन्ता । प्रजा का रक्षक और सन्तान दाता । अदिति (अखण्डित) समस्त कर्म्मों का कर्त्ता । सर्वत्र व्याप्त । सर्व शरीरों तथा कलाओं का निर्माता । सर्व भूतों में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से कार्य कर्त्ता और व्याप्त पालक । समस्त लोक लोकान्तरों का घेरने वाला वायु ही है ।

पाठकगण अब आप विचारें कि पवन देव के अधीन कितने कार्य हैं इनको ही समस्त जगत् का जनक कहा गया है उच्च कोटि के विचार शीलों का विचार हम जैसे पामरों कैसा नहीं होता वेद ज्ञाता ऋषिवरों ने जो कुछ भी कहा है वह सब वेद के अनुसार ही कहा है जिस वायु की उत्पत्ति मनुने सूर्य से मानी और उनको ऋषि कहा है यह मनु की निजि कल्पना नही इतरा का पुत्र ऐतरेय अपने इस नाम से ऋग्वेद को ब्राह्मणों का रचयिता भी ऐसा ही मानता है ।

सवितारं यजति यत्सवितारं यजति तस्माद्दुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्टं पवमानः ।

पवते सवितृ प्रसूतो ह्येष एतत्पवते ।

(सवितारम्) सूर्य को प्राप्त होता है। (यत्सवितारं यजति) जिस कारण से सूर्य को प्राप्त होता है (तस्मादुत्तरतः) उस कारण से वाम भाग से प्राप्त होता है। (पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः) सूर्य के पृष्ठ भाग से यह पवित्र (पवते) पवित्र है (सवितृ प्रसूतो ह्येष) सूर्य से उत्पन्न पवित्र ही यह (एतत् पवते) इसकी पवित्रता है।

मनु के मत से सूर्य से उत्पन्न परम पवित्र अन्यतत्वों में गति उत्पन्न वाले वायु भगवान् ही हैं इनसे कुछ स्थूल अन्तरिक्षस्थानी मरुतगण हैं। अनेक रूपों से सृष्टि के कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता मरुत गण ही में से दक्षिण दिशा के स्वामी पितर हैं। इन पितर रूप वायुओं की शुद्धि करना पितृ कर्म्म के द्वारा बताई गई है।

हमारे विचार की पुष्टि जनता के इस प्रसिद्ध विचार से भी होती है। किसी काल में जनता के कर्ण में यह बात प्रवेश करी गई है कि कुपित पितर सन्तान की हानि करते हैं वर्त्तमान में भी सन्तान हानि का उपाय यही बताया जाता है कि गया करो गया करने से पितर प्रसन्न होकर सन्तान देंगे। बात तो यह बहुत ठीक और सच्ची है कुपित वायु लक्षणों में आप पढ़ चुके हैं कि कुपित वायु जिन की पितर संज्ञा है अवश्यमेव सन्तान का अवरोध करते हैं।

आयुर्वेद विदों के मत से भी सन्तान का अवरोधक वायु ही है आयुर्वेद के मत से जिन स्त्रियों के गर्भाशय का वायु कुपित वा विकृत होता है उनके प्रायः सन्तान का अभाव होता है पुरुषों को सन्तान के अवरोधक बीस प्रकार के प्रमेह माने गये हैं उन में बात से होने वाले प्रमेह असाध्य होते हैं बात प्रमेही पुरुषों के सन्तान नहीं हो तो जहां तक लोक वा शास्त्र द्वारा विचार किया जाता है यही सिद्ध होता है कि सन्तान की उत्पत्ति और विनाश शुद्ध अशुद्ध वायु पर ही निर्भर है।

जिस पितृ कर्म्म के विषय में यह लेख लिखा गया है वह स्वतः प्रमाण वेद और छोटे बड़े सभी ग्रन्थों तथा लोक व्यवहार के प्रमाणों से सिद्ध होकर विचारशीलों को निश्चय कराने के अर्थ कि पितर मृत हैं न जीवित पर्य्याप्त प्रतीत होता है। इससे आगे और कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं थी और यह विषय भी यहीं समाप्त हो जाता किन्तु यह भी स्मरण हो कि जब कोई कार्य अपनी यथार्थता से भ्रष्ट हो जाता है तब उससे संबन्ध रखने वाले सभी कार्यों में भ्रष्टता आ जाती है।

जब से यह पितृ कर्म्म मृतकों के अर्थ माना जाने लगा तब से इसके कर्म्म काण्ड तथा कर्म्म काण्ड में आये शब्दों के विचारों में भी, बहुत अन्तर पड़ गया है। उन पर भी विचार होने की आवश्यकता है।

पाठक वृन्द को स्मरण हो कि वेद के एक मन्त्र द्वारा यह बतलाया गया है कि पितरों को स्वधा और देवों को स्वाहा शब्द के साथ पृथक २ करता हूँ। वेद मन्त्र केवल इतना ही करता है किन्तु कर्म्म काण्डी वर्ग की आज्ञा है कि देव और पितृ कर्म्म में स्वाहा और स्वधा शब्दों को प्रयुक्त करना चाहिये ऐसा ही अद्यावधि होता भी है। आर्य और सनातनी वर्ग के कर्म्म कांण्ड में भेद होते हुए भी इन शब्दों में भेद नहीं पाया जाता आर्य सज्जनों ने पितृ कर्म्म को अपनाया नहीं अतएव उनके यहां स्वधा कहने का कार्य ही नहीं पड़ता सनातनी भ्रातृ वर्ग दोनों शब्दों का प्रयोग करते हैं आर्य सज्जन देव कर्म्म को स्वीकार करते हैं। अतएव इनको देव कर्म्म में स्वाहा शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। यद्यपि आर्य समाज में पितृ कर्म्म न होने से स्वधा शब्द का प्रयोग नहीं होता किन्तु वेद में एक दो तीन नहीं बहुत स्थानों पर पितरों के साथ स्वधा शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है। यजुर्वेद में ही अवलोकन करने की कृपा कीजिये :

नमो वः पितरः स्वधायै।

यजु० २-३२

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालम् परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्।

यजु० २-३४

पितृभ्यः स्वाधायिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः ।

इस प्रकार के और बहुत प्रमाण वेद में विद्यमान हैं ग्रन्थ वृद्धि न हो इस अभिप्राय से थोड़े ही अवलोकन कराये गये । आर्य्य सज्जन स्वधा का प्रयोग नहीं करते किन्तु वेद तो करता है जिससे यह सिद्ध होता है कि वेद कर्ता के ज्ञान में भी यह ध्यान अवश्य है कि स्वधा शब्द पितरों के कर्म्म और स्वाहा देव कर्म में प्रयुक्त करना उचित है अब यह विचार शेष रहता है कि उक्त दोनों शब्दों का दोनों कार्य्यों में प्रयोग क्यों होता है । कारण कि वेद में शब्दों की योजना यूहीं नहीं करी गई उसका कोई न कोई आशय अवश्य होता है । वेद के विषय में ऋषिवरों का यह विचार है कि—

बुद्धिः पूर्वा वाक् कृतिर्वेदे ।

वेद में कुछ भी वाक् कृति (शब्द योजना) है वह सब बुद्धि पूर्वक है इस कथन से ज्ञात होता है कि इन शब्दो की योजना भी किसी आशय के बिना नहीं हुई । आर्य सज्जनों ने तो स्वाहा शब्द से यही अर्थ ग्रहण करा है कि अच्छा कथन ।

पुराणो का मत है कि स्वाहा और स्वधा ब्रह्मा की कन्यायें हैं स्वाहा का विवाह अग्नि से और स्वधा का पाणिग्रहण पितरों

से हुआ। पुराणों की इस गाथा के आधार पर ही सनातनी भ्रातृ वर्ग कहते हैं कि स्वाहा अग्नि की स्त्री है स्वाहा कहने से अग्नि प्रसन्न होता है इसी प्रकार स्वधा कहने से पितर प्रसन्न होते हैं। पुराणों की गाथा बहुत सी तो ऐसी हैं कि जिन में कुछ रहस्य भी होता है कितनी ही गाथाओं का भाव सार रहित होता है इस गाथा के विषय में यह कहना कठिन है कि इसका यह सार है। बाह्य दृष्टि से अवलोकन करने पर तो यह विदित होता है कि यह गाथा अनेक लाञ्छनों से परिपूर्ण और निस्सार है। कारण कि प्रथम तो अग्नि और पितर दोनों तत्त्व हैं तत्त्वों में इस प्रकार की भावना करना कि ये पुरुष हैं कुछ बुद्धिमत्ता प्रकाशित नहीं होती यदि दुर्जन तोष न्याय से यह मान भी लें कि स्वाहा और स्वधा अग्नि और पितरों की स्त्री हैं तो यह शंका उपस्थित होती है कि देव और पितरों की संख्या सहस्रों मानी गयी हैं, सहस्रों व्यक्तियों की एक स्त्री हो इस बात को जनता मान ले या इस पर विश्वास करले यह बुद्धि में नहीं आती। जनता तो पञ्च भर्त्ता द्रौपदी के ही विषय में शंका करती है सहस्रों की एक स्त्री इसको कोई भी बुद्धिमान मानने को तैयार न होगा। अतएव बुद्धि इस बात की आज्ञा नहीं देती कि इस गाथा को मन्तव्यरूप से मन में स्थान दिया जाय। पुराणों की यह गाथा न जाने किस अभिप्राय से कही गई है इस प्रकार की निरसार कल्पनाओं पर ध्यान देना केवल कालयापन करने के

अतिरिक्त और क्या है। किसी कवि का बचन है कि—

अविचारयत उक्तेः कत्थनं तुस खण्डनम्।

बिना विचारे कही बात का कथन तुसों को कूटना है जिस से न अन्न की प्राप्ति हो और न भुस ही होगा। हमें तो इस बा[illegible] पर विचार कर्त्तव्य है कि स्वाहा और स्वधा शब्दों को वेद ने किस रहस्य का बोधक समझ कर अपने बचन में स्थान दिया है क्या वेद भी देव और पितृ कर्म में उक्त दोनों शब्दों को इसी अभिप्राय से प्रयुक्त करता है जो आशय इन शब्दों की प्रयुक्ति का पुराण कर्त्ताओं ने ग्रहण किया है या कोई और ही गम्भीर कारण है। जिस वेद के विषय में मुनि मण्डल का यह विश्वास है कि वेद में जो कुछ भी कृति है बुद्धि पूर्वक है उस का ऐसा निस्सार कथन हो यह बुद्धि में नहीं बैठता। देव और पितृकर्म्म के साथ स्वाहा और स्वधा शब्दों की योजना से वेद का कोई और ही वृहत कारण है।

प्यारे पाठकगण इस बात का तत्व खोजने के अर्थ कि उक्त शब्दों की योजना किन २ आशयों को दृष्टि में रख कर करी गई है वेद ही की शरण लेने से इस रहस्य की प्राप्ति होगी अन्य ग्रन्थों की सहायता लेना केवलकाल यापन करना है।

वेद की शब्द रचना के अवलोकन से यह विदित होता है कि जो शब्द जहां प्रयुक्त हुआ है वह वहाँ अपनी योजना का

यह कारण कि मैं इस हेतु से यहां प्रयुक्त हुआ हूँ स्वयं बताता है।

वेदों की शब्द योजना के अवलोकन से यह विदित होता है कि वेद शब्दों के साथ प्राय उदात्तादि स्वरों की योजना होती जिनके द्वारा उच्चारण हुए शब्द अनेक अर्थों के देने वाले होते हैं और प्रयोक्ता की इष्ट सिद्धि के दाता भी होते हैं। स्वरों की प्रयुक्ति लोक में भी जिस शब्द के साथ होती है उसमें विचित्र गुण हो जाता है। हास्य रौद्र आदि रस स्वरों से ही उत्पन्न होते हैं जिन शब्दों को जनता नित्य भाषण करती है वे ही शब्द एक गायक के द्वारा स्वरके साथ उच्चारण होकर कितना प्रभाव शाली हो जाते हैं। युद्ध के समय वाद्यो में प्रयुक्त शब्द क्लीव को भी बद्ध के अर्थ उत्तेजित करने वाला होता है। यद्यपि शब्द वर्णों का समूह है किन्तु प्रयोक्ता की मानसिक विद्युत् शब्द का कारण होने से अतुल बल और प्रभाव वाला हो जाता है। क्या यह हम से अप्रकट है कि बांसुरी बांस के खण्ड से बनी होती है और बीणा पर लोहे और पीतल के तार होते हैं यदि इन दोनों वाद्यों को एक सामान्य व्यक्ति बजाये तो तुन २ के अतिरिक्त और कुछ शब्द न निकलेगा जिसको श्रवण कर यही कहना होगा कि कृपा करो, इन्हीं दोनों बांसुरी और बीणा को स्वरों का ज्ञाता बजावे तो प्राणों को आकर्षित करने वाला हो जाता है। स्वर के साथ उच्चारण हुआ शब्द अतुल प्रभाव वाला होकर वक्ता की

इष्ट सिद्धि का दाता माना गया है। जिन शब्दों का जनता नित्य व्यवहार करती है उसमें स्वरों के द्वारा प्रयुक्त शब्द का प्रभाव कुछ से कुछ हो जाता है। जब कभी किसी को भर्त्सना करनी होती है तब तीव्र तर शब्द का प्रयोग कार्य सिद्धि अर्थ करना होता है तीव्र तर शब्द का प्रयाग मन को पीछे ढकेलने वाला माना गया है जिस प्रकार लोक में स्वरों के द्वारा शब्द प्रयुक्त होकर कार्य सिद्धि के दाता होते हैं इसी प्रकार वेद में स्वरो का प्रयोग शब्दों के कार्यानुकूल करने की आज्ञा है।

ऋषियों ने शब्दों के प्रयुक्त करने में भी खोज को अन्तिम सीमा पर्यन्त ही पहुंचाया है जिन उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरोंका पूर्व वर्णन हो चुका है ऋषियों ने उनके तीन२भेद और भी कहे हैं ह्रस्व उदात्त दीर्घ उदात्त लुप्त उदात्त एवं अनु दात्त और स्वरित के भी उक्त तीन भेद कहे गये हैं। इन स्वरों के द्वारा शब्दों के उच्चारण करने से बहुत कार्यों की सिद्धि मानी गई है। वेद के मन्त्रों के साथ स्वरों का योग यह बतलाता है कि इन स्वरों के द्वारा वेद कर्त्ता ने अपने कथन में अत्यन्त लाघवता करदी हैं। संस्कारों में आये मन्त्रों का प्रभाव स्वरों ही के द्वारा होना सम्भव है ऋषी गण जिन को स्वर विद्या का पूर्ण ज्ञान था जिस संस्कार में जो गुण उत्पन्न करना इष्ट समझते थे उन्हीं,

स्वरों के द्वारा मन्त्र का उच्चारण करते थे स्वर के साथ उच्चा-
रण हुआ मन्त्र जिस प्रकार की विद्युत को ग्रहण कर स्त्री वा
पुरुष के कर्ण कुहर में प्रवेश करता था वही शक्ति शरीर में
उत्पन्न हो इष्ट सिद्धि का पर्याप्त कारण होता था जिन संस्कारों
के द्वारा सम्प्रति सभी संस्कार कर्त्ता कार्य्य कराते है यह वर्त्त-
मान में क्रीड़ा मात्र हैं। बहुत से सज्जनों का विचार है कि
सम्प्रति स्वर प्रकरण व्याकरण में निरर्थक प्रतीत होता है अतएव
स्वर प्रकरण को पृथक् कर देना उचित है उन महाशयों का यह
विचार भयावना है। भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में से
स्वर प्रकरण को पृथक करके वेद के पठन पाठन को बड़ा धक्का
दिया जिन यज्ञों के द्वारा ऋषिगण अति वृष्टि का अवरोध और
अनावृष्टि का संचालन करते थे वहां मन्त्रों के साथ स्वरों का
ही योग होता था मन्त्र तो वेद के वही हैं जिन को हम नित्य
पढते हैं स्वरों को ही योग हमको नहीं आता लोक के गायकों से
जाना गया है कि रागों के स्वर यदि अच्छी प्रकार आते हों तो
जो २ प्रभाव स्वरों के वर्णन किये गये हैं होने सम्भव है मेघ-
राग यदि गाया जाय तो उस राग के स्वरो के द्वारा गायक के
मुख से निकला विद्युत गगन मण्डल में पहुँच मेघों का लाने
वाला होना सम्भव है इत्यादि कारणों से स्वर महिमा जितनी
भी कही जाय थोड़ी ही है। जो विद्या हमारे हाथ से निकल

जाती है वह हमें पर्वत प्रतीत होने लगती है आजाने पर फिर वह सुगम हो जाती है। यदि हम वेदों से वही लाभ प्राप्त करना चाहते हैं कि जिस को ऋषिगण ने प्राप्त कर वेदों से अपनी और जगत की रक्षा की तो वेद मन्त्रों के साथ स्वरों की विधि का खोज करें।

जिस ऋषिमंडलने वेदोंका चिरकाल अवगाहन कर वेद मंत्रों को कर्म्मकांड में प्रयुक्त किया है उन्हीं ऋषिगण ने देव और पितृ कर्म में स्वाहा और स्वधा शब्दों का प्रयोग करने की आज्ञा दी हैं ऋषिगण कार्य करने के समय पूर्व यह देखते थे कि यहां क्या कर्तव्य हैं पश्चात शब्द प्रयुक्त करते थे। यज्ञ के कार्य में भी पूर्व यह विचार हुआ कि यहां किस द्रव्य से किस तत्त्व के द्वारा कार्य करना इष्ट है और वह किस शब्द के प्रयोग से सिद्ध होना श्रेष्ठ है। इस विचार के द्वारा यह सिद्ध हुआ कि यज्ञमें अग्नि के द्वारा हवि देना है अग्नि ऊर्ध्व ज्वलन होनेसे अपने में दिये पदार्थों को वायु के द्वारा गगन मण्डल की ओर लेजाने के स्वभाव वाला है अतएव इस का स्वभाविक ऊर्ध्व ज्वलन गति को आगे ढकेलने वाला ही शब्द प्रयुक्त करना लाभ दायक होगा इत्यादि विचार के द्वारा स्वाहा शब्द ही ऐसा विदित हुआ कि जिससे अपने विचार की सिद्धि होनी पाई गई। यद्यपि पाणिनि ऋषि ने

नमः स्वस्ति स्वाहास्वधाऽलंवषड्योगे च तुर्थी

इस सूत्रमें आज्ञा दी है कि चतुर्थी विभक्ति के साथ सूत्र-स्थ शब्दों में से चाहे जिसका प्रयोग करो ऐसा ही करा भी जाता है, किन्तु हविदान में जिस इष्ट सिद्धि का दाता स्वाहा शब्द पाया गया, ऐसे और न जचे। कारण कि सूत्र में स्वाहा और स्वधा शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्द प्लुत उदात्त उच्चारण करने पर भी इस प्रकार सुगमता से उच्चारण होते नहीं पाये गये। यह बात कहने मात्र ही नहीं बल्कि वक्तागण उच्चारण करके भी परीक्षा करें। नमः शब्द चाहे जितने बलसे उच्चारण करो इसका धक्का हृदय की ओर को ही लगता है। स्व-स्तिशब्दहस्व इकारान्त होने से उस कार्य्य का साधक सिद्ध नहीं होता। अलम् वषट् ये शब्द हलन्त हैं, इनसे भी कार्य्यसिद्धि नहीं होती, ऋषिवर चाहते थे कि अग्नि में दिये हुए पदार्थ को गगन मण्डल की ओर हमारे दिये को प्रेरने वाला शब्द होना उचित है और वह आकाशवाची भी हो ह अव्यय है और भी अर्थों का वाचक है और आकाश का वाची भी है। अतएव यही प्रयुक्त होना उचित इसमें सन्देह भी नहीं। हविदानसे जो पदार्थ ऊपर उठता है प्लुत स्वरसे उच्चारण किया शब्द उसे गगन मण्डल की ओर प्रेरने में सहायक होता है। इत्यादि विचारों के द्वारा हविदान में स्वाहा का उच्चारण प्रयुक्त करना उचित है। जिस वेद के द्वारा यह शब्द देव कर्म में प्रयुक्त करने की आज्ञा है वह भी किसी निरर्थक शब्द का प्रयोक्ता हो ऐसा मानना वक्ताओं की जड़ता का सूचक है।

पाठकगण ! एकान्त देशमें एकाग्र चित्त होकर विचार कर देखो इस उक्त शब्द की योजना में कितनी उच्चकोटि का तत्व भरा गया है।

पितृकर्म्म में जिस स्वधा शब्द की आज्ञा है उसका भी यही कारण है, पितृकर्म्म की क्रिया में अन्न और जलकी प्रधानता है। पितृकर्म्म अन्न और जलके के द्वारा होता है, उक्त दोनों की गति अधोगामिनी है, इस कर्म्म में वह शब्द प्रयुक्त हो जिसकी गति अधोगामिनी हो सूत्र में कहे शब्दों में स्वधा शब्द ही इस पितृकर्म्म में प्रयुक्त करने के अर्थ पाया गया जिस प्रकार हकार आकाश का वाचक माना गया है उसी प्रकार तत्ववेत्ताओं ने धकार में धरणी अर्थ ग्रहण कर बताया है कि इसमें अन्न और जल है जिस कार्य्य में अन्न और जल के द्वारा कार्य्य अभीष्ट है जिसको पूर्णतया सिद्धि के अर्थ स्वधा शब्द भी प्रयुक्त होना उचित है। पितृकर्म्म में स्वधा शब्द भी वेद भगवान् की ही आज्ञा द्वारा बड़े उच्चभाव को प्रकाश करने के अर्थ ऋषिवरों ने प्रयुक्त करने की आज्ञा दी है।

पाठकगण ! आप विचारें कि स्वाहा और स्वधा शब्द देव और पितृ कर्म्म में किस अभिप्राय से प्रयुक्त किए गए हैं मध्यम काल के विद्वानों ने इस पर ध्यान न दे अपनी मन घड़न्त कल्पना कर वेदोंके गौरव को जनताके चित्तोंमें आदर देने के बदले और घटाया। अन्य मतावलम्बी विद्वानों ने इसी

प्रकार की बिना शिर पदों की घड़न्त देख वेदों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा। विचारशीलों को मध्यम काल के विचारों द्वारा हुई घड़न्त और इस विचार को जो इस लेख में अवलोकन कराया गया है, देख बलात् यह मानना पड़ेगा कि वस्तुत इन दोनें शब्दों की योजना पुष्ट विचारें द्वारा हुई है। न ये किसी की स्त्री और न कोई इन का पुरुष है। जिस अभिप्राय से ये देव शब्द और पितृ कर्म्म में प्रयुक्त किए गए हैं वह भाव बड़ा उच्च भाव है, ऐसा ही मानना वा मनवाना उचित है।

यम

पितृ कर्म्म सम्बन्धी ग्रन्थों के अवलोकन से यह विदित होता है कि यम भी कोई एक व्यक्ति व शक्ति ऐसी है कि जिस का पितरें से सम्बन्ध विशेष पाया जाता है। अतएव इस यम शब्द पर विचार विशेष होना उचित है।

वेद तथा पुराणादि ग्रन्थों में भी यम का वर्णन अधिकता से पाया जाता है, वेद में यम शब्द बहुत अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, पुराणों में अलंकार रूप से यम की बहुत गाथा कही गई है। हमें यहां यम शब्द को पूर्ण व्याख्या कर के ग्रन्थ का आकारबढ़ाना इष्ट नहीं कारण कि जोमहानुभाव ग्रन्थावलोकन की शक्ति रखते हैं वे तो ग्रन्थें के अवलोकन से अवलोकन करही लेंगे, फिर ऐसा क्यों किया जाय और न यह इस लेख का विषय है, इस लेख का विषय पितृ कर्म्म है इस विषय के

साथ जिस प्रकरण का सम्बन्ध हो वही इस लेख में आना उचित है।

इस हेतु से जिस का सम्बन्ध पितरों से है यहां उसी का विचार करंगे।

पाठकगण! यह पूर्व कह आए हैं कि यम का सम्बन्ध पितरों से विशेषतया पाया जाता है। इस यम पर यह विचार करना अवश्य है कि यह यम कोई शक्ति है वा व्यक्ति, जड़ वा चेतन है। वेद तथा पुराणोंके अवलोकन से यह विदितहोता है कि यम पितरों का राजा है। यह हम पूर्ण सिद्ध कर चुके हैं कि पितर न मृत हैं ओर न जीवित। पितर इस रचना के उत्पत्ति कर्त्ता तथा रक्षक और पालक दक्षिण दिशा के स्वामी मरुद् गण में से वायु विशेष हैं। यह निर्विवाद सिद्ध है कि यम पितरों का राजा है, इस में वेद और पुराण दोनों ही को साक्षी मानने योग्य है। कारण कि दोनों ही इस विषय में सहमत हैं।

जब यह मानना वा कहना सिद्ध होगया कि दोनों साक्षी जो कहती है वह सत्य है। तब यह सिद्ध होने में क्या बात शेष रहजाती है कि यम भी एक शक्ति वायु विशेष ही है। कारण कि जिस जाति की प्रजा होतो है उसो जाति का राजा भी माना वा कहा जाता है। लोक प्रथासे भो यही पाया जाता है। मनुष्यों का सम्राट् मनुष्य, पक्षियों का पक्षी, चतुष्पदों का चतुष्पद ही माना वा कहा जाता है। इसी प्रकार पितर

वायु हैं, उनका राजा भी वायु ही होगा वा है। बुद्धिमान् इस बात से इन्कार नहीं कर सकता, हठी दुराग्रही चाहे माने वा न माने।

पाठकगण! यहां यह विचार करना भी अवश्य है कि राजा किसे कहते हैं। राजा किसी विशेष व्यक्ति का ही नाम है, वा कुछ गुणोंसे राजपद प्राप्त होता है। यहां हम मनुष्यों के वर्त्तमान राजा का विचार न कर दैवी रचनामें राजा होने की शैली पर विचार करेंगे। लोक में मृगराज कहने से सिंह माना जाता है। सिंह को इस मृगराज कहने से यह अर्थ हस्तगत होता है कि जो अपने वर्ग में बलवान हो जिसका आतंक उस वर्गके सब जन्तुओं के चित्तों पर बैठा हो वा यूँ कहो कि जिस के अधीन उसका वर्ग हो।

राजाके इन लक्षणों से यह सिद्ध हुआ कि यम जो पितरों का राजा है वह सब पितररूप वायुओं से बलवान है और पितर उसके अधीन हैं। यहां हमारे पाठकों को यह प्रश्न अवश्य होगा कि पूर्व के कथन से तो यह बात बुद्धि में आती है कि बलवान् होने और अपने वर्ग को अपने अधीन रखने से राजा होना बुद्धि में आता है किन्तु तत्वों में यह कैसे मान लिया जाय तत्व तो जड़ हैं और एक ही स्वरूप के दृष्टि आते हैं।

पाठकगण! यह प्रश्न आपका उसी समय तक ठीक कहा जासकता है जबतक कि तत्वों के वास्तविक स्वरूप की विवे-

चना नहीं हुई। जिस समय तत्वोंकी विवेचना होजायगी उसी समय यह बात भी सहज ही में सिद्ध होजायगी। पाठकगण! आपको सूक्ष्म विचार से अवलोकन करने पर यह ज्ञात होना बहुत सुगम है कि प्रत्येक पदार्थ चाहे तत्व हो वा तत्वों से निर्मित कोई वस्तु हो तीन २ प्रकार की दृष्टिगत होती है। एक स्थूल और द्वितीय सूक्ष्म इसी प्रकार तृतीय इन दोनों से अत्यन्त सूक्ष्म है उसको सूक्ष्मतर कहते हैं।

प्रथम इस पृथ्वी को ही अवलोकन करने की कृपा करें। जिसपर प्राणीमात्र का निवास है स्थूल है स्थानें में जो भाग सूर्य्य की किरणों द्वारा दृष्टिगत होता है, इसका नाम त्रसरेणु है। ये त्रसरेणु रूपसे यत्रतत्र व्याप्त हैं। इनकी व्याप्ति से हमारे तथा हमारे वाहन आदि के गमनागमन में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती। यह पृथ्वीका सूक्ष्मरूप तृतीय स्वरूप पर-माणुस्वरूप है इसी भाग को सूक्ष्मतर कहते हैं।

जल

यह भी तीन ही रूपोंमें विभक्त है। प्रवाहरूप जो जलाशयों में दृष्टि गत होता है, द्वितीय स्वरूप कण और तृतीय वाष्परूप होना सिद्ध ही है।

अग्नि।

स्थूल जो काष्ठादि के संयोग से दृष्टिगत होता है द्वितीय स्फुलिंग तृतीय उष्मारूप से सर्वत्र व्याप्त है।

वायु

वायु का दृष्टिगत होना इस हेतु से असम्भव है कि वायु को पुराने आचार्यों ने कहा है कि अव्यक्तोऽव्यक्त कर्म्माच वायु अव्यक्त है। किन्तु कार्य्य इसके व्यक्त हैं। वायुका एक वृक्षादि कम्पन कार्य्य तो प्रत्यक्ष होता है द्वितीयस्पर्श भी लग-भग प्रत्यक्ष ही के कहना वा मानना उचित है। तृतीय स्वरूप जो अति सूक्ष्म है अनुमान गम्य है उसको अनुमान से जानना ही उचित है। इस प्रकार प्रत्येक तत्व तीन २ प्रकार का पाया जाता है।

आकाश

आकाश के विषय में तत्ववेत्ताओं का विचार तो यह है कि आकाश एक ही रस है। किन्तु विचार यह बताता है कि जिस आकाश का सम्बन्ध वायु से है उसके भी इतने ही स्व-रूप होने चाहिये जितने वायु के पाये जाते हैं। कारण कि आकाश कारण है। वायु के कारण के गुण कार्य्य में होते हैं ऐसा माना जाता है। इस कथन का विपर्य्य करने से यह भी सिद्ध होता है। कि जितने गुण कार्य्य में पाये जाते हैं उतने ही कारण में भी होने चाहिये। यद्यपि आकाश के विभाग नहीं किये गये किन्तु इस अनुमान से माने जा सकते हैं।

तत्वों के विषयमें इस प्रकार विचार करने से पाठकगणों को यह ज्ञात होगया होगा कि वस्तुतः तत्वों में ये तीन भेद

होने सम्भव हैं, अब इन तीनों भेदों की यह पड़ताल करनी शेष रहती है कि इनका एक दूसरे से क्या सम्बन्ध है। इस पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक तत्व की तीनों गतियोंका परस्पर सम्बन्ध घनिष्ट है परन्तु भेद इतना है सूक्ष्मतर स्थूल और सूक्ष्म में रहता हुआ भी अव्याहत गतिवाला माना गया है। स्थूल सूक्ष्म की अपेक्षा सूक्ष्मतर की गति अति उच्च होती है। इसी कारण वह सर्वगत माना गया है।

पाठक गण यह सूक्ष्मतर वायु सर्व गत होने से यम माना गया है। इसी सूक्ष्म तर वायु के अधीन सूक्ष्म और स्थूलतर रहते हैं इसी कारण इसे पितरों का राजा माना गया है। यह अपने वर्ग स्थूल और सूक्ष्म वायुओं को अपने वश में रखता है, जहां इन दोनों की गति नहीं वहां से इन के उपयोगीगुणों को प्राप्त कर इन को बलदेता और पुष्ट करता है और पृथिवी तल से गृहण किए द्रव्य को इन से ग्रहण कर जहां वह पदार्थ वा गुण पहुंचाता है वहां इस का राजापन है। हमारे दिए हुए को इष्ट स्थान पर पहुंचाना, इन ही यम रूप वायु भगवान् का कार्य है। यद्यपि यम शब्द अनेक अर्थों का वाचक है किन्तु जिस का नाम यम बताया जाता है और वह पितरों का राजा भी कहा जाता है, वह वायु ही सिद्ध होता है कोई चेतन व्यक्ति हो ऐसा मानना भ्रान्ति है। युक्तियों से यह सिद्ध हो जाने पर यम वायु है, अब यह विचारना

शेष रहता है कि यह यम रूप वायु श्राद्ध में क्या कार्य्य करता है। इस का पितरों से क्या सम्बन्ध है और श्राद्ध जिन पितरों के अर्थ किया जाता है वो पितर कहां हैं।

पाठकगण! जिस यमरूप वायुको पितरों का राजा कहा गया है उस यम स्वरूप वायु का पितरों से वही सम्बन्ध है जो सम्बन्ध प्राणका शरीर से है। जैसे विना प्राण शरीर निरर्थक है तैसे ही यम के विना पितर अपना कार्य्य करने में असमर्थ प्रतीत होते हैं। जिन पितरों के अर्थ श्राद्ध वा पितृ कर्म्म करने की आज्ञा वेदमें है उनका निवास विशेषतया दक्षिण दिशामें रहता है और यमरूप वायु के द्वारा चन्द्रमंडल से उनका सम्बन्ध है।

पितृकर्म्म के द्वारा हुई क्रिया चन्द्रमण्डल को प्राप्त होकर ही सूर्य्य को प्राप्त होती है। पितृकर्म्म में दिये पदार्थों का अटूट सम्बन्ध सूर्य्य से नहीं ऐसा पाया जाता है। अब यह विषय इतना स्फुट होगया प्रतीत होता है कि जिसमें और विशेष कहने की आवश्यक्ता नहीं कारण कि जिस पक्षको वादी प्रतिवादी दोनों स्वीकार करें वह सिद्ध ही कहा वा माना जाता है। प्रतिवादी इस बातको स्वीकार करते ही हैं कि यम पितरों का राजा है भेद इतना था कि प्रतिवादी यम के स्वरूप को कुछ और ही मानते थे अब बलात् यही मानना होगया जो सिद्ध हो चुका है। कारण कि पितरों का मृतक होना किसी ग्रन्थसे सिद्ध नहीं होता। वेद में आये पितृयाण

शब्द से दक्षिण दिशा निवासी वायु सिद्ध होते हैं। जब पितर वायु सिद्ध होगये तब उनका राजा वायु होगा यही मानना पड़ेगा। विपक्षी इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि पितरों की दिशा दक्षिण और निवासस्थान चन्द्रलोक है।।जब यह बात दोनों पक्षों को स्वीकार है तब इस विषय की सिद्धि में क्या त्रुटि शेष रहती है। कहना होगा कि कुछ नहीं यह विषय निर्विवाद सिद्ध है।

पाठक गण ! अब हम आप का ध्यान खगोल रचना की ओर आकर्षित कर यह अवलोकन कराना चाहते हैं कि इस खगोल रचना में क्या २ रहस्यपूर्ण उपदेश भर रहे हैं और किस प्रकार उसके द्वारा स्थावर और जंगम रचना का पालन होता है।

पाठकों को विदित हो कि ज्योतिर्विदों ने खगोल रचना परबहुत कुछ अवगाहन कर बहुत कुछ निश्चय किया, किन्तु गीत सब ने सविता देव के ही गाए। चन्द्रमा को केवल रात्रि का प्रकाशक ही माना कुछ विशेषता के साथ नहीं कहा। यदि विचार कर देखा जाता है तो यह सिद्ध होता है कि सूर्य्य की अपेक्षा चन्द्रमा से भी रचना का सम्बन्ध कुछ न्यून नहीं है, केवल सूर्य्य सेही सब कार्य्य पूर्ण हो जाया करते ;तब चन्द्रमा को रचने की आवश्यकता ही क्या थी। किसी ऐसी शक्ति का कार्य्य जिस की महिमा के द्वारा सभी को मूर्द्धा नवानी पड़ती है, निरर्थक हो बुद्धि में नहीं आता ।

सूर्य्य का सम्बन्ध समस्त ब्रह्माण्ड से माना जाता है और चन्द्रमा का कुछ नक्षत्रों और केवल हमारी पृथिवी ही से है। यद्यपि ज्योतिर्विदों ने सूर्य्य को ब्राह्माण्ड का आधार माना है किन्तु इस बात पर विचार नहीं किया कि सूर्य्य के क्या २ कार्य्य विशेष हैं।

सूर्य्य के नामों के अवलोकन से यह विदित होता है कि सूर्य्य का मुख्य नाम त्वष्टा है जिस का अर्थ है सूक्ष्म करना। येही देखा भी जाता है अन्य नामों से कहीं प्रकाश तथा आकर्षण करना आदि पाये जाते हैं। आनन्द का उत्पादक नाम सूर्य्य का एक भी नहीं पाया जाता, आल्हाद को उत्पादक करने वाले चन्द्रमा भगवान ही सिद्ध होते हैं। यदि कहो कि चन्द्रमा वस्तुतः प्रकाशक नहीं सूर्य्य ही के प्रकाश से प्रकाशित है। तब यह कहना होगा कि यद्यपि चन्द्रमा सूर्य्य से प्रकाशित है परन्तु गुण कार्य्य विपरीत होने से वह कार्य्य चन्द्रमा ही के माने जायँगे. यदि सूर्य्य अपने वास्तविक स्वरूप से यह कार्य्य करने में समर्थ होता तब चन्द्रमा द्वारा सूर्य्य के प्रकाश को परिवर्तन करने की क्या आवश्यक्ता थी। कर्त्ता ने कोई विशेषता तो अनुभव करी ही होगी। इत्यादि कारणों से स्थावर तथा जंगम रचना के अर्थ जितना उपयोगी सूर्य्य है चन्द्रमा भी कुछ न्यून गुणों वाला अवश्य रचना का एक मात्र अवलम्बन है। जिस काल में सूर्य्य भगवान हमारी निवास स्थानीय पृथिवी के समस्त जड़ और चेतन सृष्टि में

अपने तीव्र प्रकाश से द्रवत्व उत्पन्न कर पृथिवी की ओझल हो विषमय मृत्यु रूप अन्धकार को अधिकार दे गुप्त हो जाते हैं, उस समय चन्द्रमा ही अपनी अमृतमयी किरणों से हमारे जीवन का एक मात्र आश्रय होते हैं। चाहे ब्रह्माण्ड के धारक सविता देव हों, किन्तु इस धरातल से जिस पर हमारा निवास है दिन के समय जितने काल सूर्य्य कार्य्य करता है उतने ही समय चन्द्रमा भी करता है। हमारे कार्यों की सहायक दोनों ही शक्तियां हैं, हमें अग्निहोत्र के द्वारा जिन पदार्थों को सूर्य्य के समीप पहुंचाना इष्ट है, उतना ही पितृ कर्म्म के द्वारा चन्द्रमा के समीप भी पहुंचाना अपना कर्त्त-व्य समझना उचित है। प्रभुकी यह क्रिया भी हमें इस बातकी ओर प्रेरणा कर ती है कि उसने चन्द्रमा को केवल हमारी ही निवास स्थानीय पृथ्वी के अर्थ रचा है। इस हेतु भी हमारा संबन्ध सूर्य्य की अपेक्षा चन्द्रमा से विशेष है और होना भी चाहिये।

प्यारे पाठकगण! यदि आप इस खगोल की ओर अच्छी प्रकार ध्यानदें तो आपको और भी बहुत से रहस्य प्राप्त हों। हमारे लोक व्यवहारों के रचयिताओं ने इस खगोल से ही शिक्षा प्राप्त कर अपने समस्त व्यवहारों को स्थापन किया है। वा यूँ कहो कि हमारे समस्त लोक व्यवहारों के नियत कराने के अर्थ समस्त खगोल रचना ही पूर्ण उपदेशक है। पाठकगण! प्रथम आप इस ओर ध्यान दीजिये कि लोक में नामकरण करने

कि विधि कहां से हमें प्राप्त हुई यह भी खगोल से प्राप्त हुई। आयुर्वेदों में तथा अन्य ग्रन्थों में जितने भी नाम ऋषियों के पाओगे उतने ही नाम आपको तारागणों के भी मिलेंगे। जिस नक्षत्र का जो कार्य्य अवलोकन हुआ उनही गुणों से युक्त जिसको पाया उस ऋषिका नाम करण हुआ।

राज्य सम्बन्ध जो लोक में है, यह प्रबन्ध भी खगोल से ही प्राप्त हुआ है। राज्य प्रबन्ध की यह कृति कि ग्राम और ग्रामों के समूह का एक मण्डल (जि०) कई एक मण्डलोंका प्रान्त बहुत प्रान्तों का एकदेश इन उक्त ग्रामों, मण्डलों, प्रान्तों तथा देशों की एक राज्यधानी में सम्राट् का निवास होता है। इसी प्रकार सूर्य्य सम्राट् और अन्य ग्रह नक्षत्र आदि जो खगोल में विभक्त हैं इस खगोल रचना से ही लोकके प्रबन्धक नियत हुए प्रतीत होते हैं।

इस लोक प्रबन्ध में यह दृष्टिगत होता है कि मण्डल तथा प्रान्त देशोंके अधिकारी पृथक् २ होते हैं। जिस मण्डलका जो भी अधिकारी हो वह वहां की जनता का निरीक्षक होता है वहां की जनता यदि अपना कोई संदेशा सम्राट् के समीप पहुंचाना चाहेतब उस मण्डलाधिकारीके ही द्वारा पहुंचायेगी। प्रजाका सम्राट् से अटूट संबंध नहीं होता। इसी प्रकार खगोल में सूर्य्य सम्राट् है चन्द्रमा अनेक नक्षत्रों के अधिपतित्व से माण्डलीक राजा है, हमें जो कुछ भी सूर्य्य के समीप पहुंचाना इष्ट हो वह प्रथम चन्द्रमा के निकट पहुंचाना उचित है

मनुष्यराज्य में जो यह कहा गया है कि मनुष्यों का राजा से अटूट सम्बन्ध नहीं है प्रायः यह असत्य भी हो सकता है। कारण कि मनुष्य वर्ग अपने लेख आदि द्वारा किसी मण्डलाधिकारी के बिना भी पहुंचा सकते हैं किन्तु खगोल का यह प्रबन्ध अन्यथा होना असम्भव है। खगोल रचना में जिस से जिसका सम्बन्ध विशेष है वहीं बना रहेगा पितृ कर्म्म और अग्नि द्वारा किया देव कर्म्म दोनों चन्द्रमा के द्वारा ही सूर्य्य को प्राप्त होते हैं।

जिस काल से ज्योतिर्विद्दोंने काल ज्ञानके अर्थ गणित की परिपाटी का आरम्भ कर पंचाङ्ग द्वारा ग्रहादि का राशियों पर गमनागमन जाना तब से अद्या वधि यही विदित होता है कि प्रत्येक अमावस्या को सूर्य्य और चन्द्रमा एक ही राशि पर स्थित होते हैं ओर पूर्णिमा को एक दूसरे के समक्ष में दृष्टिगत होते हैं। प्रभु के इस अटल नियम के भरोसे पर ही शत वर्ष आगे के ग्रहणों का काल निःशंकता से कहने का साहस होता है।

पाठकवर्ग! अब आप विचारें कि पितृ कर्म्म और देवकर्म्म में चन्द्रमा का ही प्रधानत्व है वा नहीं।

चन्द्रमा के इसी प्रधानत्व ने ऋषिगण को पितृकर्म्म और देव कर्म्म का काल अमावस्या औरपूर्णिमा रखनेके अर्थ विवश करा। इन नित्यके कालोंकी अपेक्षा और जो यज्ञादि के काल नियत हैंउन में नक्षत्रादि का प्रधानत्व पाया जाता है,

क्षत्रों के स्वामी भी भगवान कलानिधि ही कहे वा माने जाते हैं। सूर्य्य ग्रहाधिपति है, नक्षत्राधिपति चन्द्रमा ही माना गया है। इसी हेतु जितने गुण हम सूर्य्य भगवान के गान करें उस से कुछ न्यून चन्द्रमा के भी गाने उचित हैं।

पितृ कर्म्म चन्द्रमाके ही द्वारा सिद्ध होता है। दक्षिणादि शस्थ तीनों प्रकार के वायुओं में सूक्ष्मतर वायु की संज्ञा मानी गई है इसी सूक्ष्मतर वायु द्वारा पितृ कर्म्म की क्रिया चन्द्रमण्डल पर्यन्त पहुंचती है।

पाठकगण ! आप को विदित हो कि पुराणों में यम का स्वरूप भयावना और स्वभाव तीक्ष्ण वर्णन हुआ है यह एक अलंकार रूप से वर्णन है। इस का पता भी आगे चल कर स्फुट हो जायगा कि क्यों ऐसा कहा गया है।

वाचकवृन्द ! को यह भी विदित हो कि दिशाओं का स्वामित्व वायु भगवान ही को है। ऐसा संस्कृत साहित्य के ज्ञाताओं ने कहा है। आयुर्वेद ज्ञाताओं ने दिशाओं के वायुओं का गुण वर्णन करते समय अन्य दिशाओं की अपेक्षा दक्षिण दिशा के वायु केगुण निम्न प्रकार कहे हैं।

दक्षिण का वायु खर उष्ण और तीक्ष्ण होता है, लोक में भी एक कहावत है कि "वायु चलै दक्षिणा तब माँड कहां से चक्खना" इस कहावत सेभी यही विदित होता है कि दक्षिण दिशा का पवन वर्षा का अवरोधक है। इस ओर के वायु में शोष गुण का आधिक्य है।

पाठकगण ! प्रत्यक्ष के अर्थ प्रमाण की क्या आवश्यकता है, क्या यह हम से अप्रकट है कि मरु भूमि दक्षिण ही में पाई जाती है । ज्योतिष शास्त्र के अवलोकन से यह भी पाया जाता है कि जल का शोषण करने वाले अगस्त आदि तारा गणों का बहुल्य इसी दिशा में पाया जाता है, क्या इत्यादि प्रमाणों से यह सिद्ध होने में सन्देह रहता है कि और दिशाओं की अपेक्षा दक्षिण दिशा अधिक गुणों वाली नहीं है । इस दिशा के स्वामी खर तथा शोष और तीक्ष्ण गुण वाले वायु देव हैं, इनही की शान्ति के अर्थ चन्द्रमा भगवान दक्षिण दिशा विशेष रूप से रहते हैं इन ही शोष गुण वाले वायु भगवान के निमित्त श्राद्ध में जल क्रिया विशेषतया होती है वायु के इस क्रूर स्वभाव को अवलोकन कर कवियों ने अलंकार रूप से इनका स्वरूप भयावना वर्णन कर डाला । इन का वाहन महिष भी इसी हेतु से कहा गया है कि महिष तमोगुण विशेष होता है । वर्ण भी इन का श्याम ही रक्खा वा माना है वायु श्याम गुण वाला है आयुर्वेदाचार्यों ने माना है कि मनुष्य के मुख ओष्ठ तथा विष्टा मूत्रादि में श्यामता वायु सेही आती है खेतआदि में बीजों के उगने में भी यह देखा जाता है कि यदि खिरवे को वायु न लगे केवल अग्नि ही का प्रभाव रहे तो खिरवा पीत रङ्ग होगा केवल जल के प्रभाव से हरित वायु के प्रभाव से श्यामता प्राप्त होती है अतएव वायु श्यामता उत्पन्न करने वाला है ।

वायु की श्यामता का एक यह भी प्रमाण है कि वेदों में अग्नि को श्याम वर्ण कहा गया है, अग्नि वायु का कार्य्य है इस हेतु से भी वायुश्याम है। इत्यादि हेतुओं से कवियों ने यम का स्वरूप भयावना ही वर्णन किया है।

पाठकगण को विदित हो कि पुराने कवियों की अपेक्षा आधुनिक कवि अत्युक्ति से बात को इतना बढ़ा कर कहते हैं कि जिस से विषय की सम्भवता प्रतीत न हो असम्भवता की झलक आ जाती है।

यह कविजनों की अत्युक्ति का ही कारण है कि जिस से जनता ने यम के स्वरूप में कुछ की कुछ भावना कर ली। वस्तुतः वायु ही यम है और वह दक्षिण दिशामें ही विशेष-तया रहता है, इसी खर और तीक्ष्ण स्वभाव की साम्यता के अर्थ पितृ कर्म्म की आवश्यकता है। इसी को वेदों में अत्यन्त उग्र स्वभाव इन्द्र माना है, पितर इसके इषु (बाण) कहे गये हैं, दिशाओं के अवलोकन से भी यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पूर्व और दक्षिण दिशा आग्नेय गुण विशेष वाली हैं। इन दिशाओं की जनता के स्वरूप में धवलत्व नहीं पाया जाता, स्वभावों में भी मृदुता की अपेक्षा क्रूरता विशेषतया पाई जाती है।

अब हमें इस विषयमें अधिक कथन की आवश्यकता इस कारण प्रतीत नहीं होती कि सज्जनों के अर्थ इतना ही कथन

पर्य्याप्त होगा। जो कुछ इस कथन का सार है वह सब इसमें आगया जिस यम को पितरों का राजा माना जाता है वह दक्षिण दिशाके वायुओं में अत्यन्त सूक्ष्मतर है। चन्द्रमण्डल से उसका संबंध विशेष है श्राद्ध कर्म्म में इनका आधिपत्य है। दिशा दक्षिण है पितृ कर्म्म भी दक्षिणाभिमुख होकर ही होता है। यदि यहां यह शंका हो कि दक्षिणाभिमुख होकर करने से क्या लाभ है? तब उत्तर यह होगा कि देव कर्म्म उत्तराभिमुख तथा पूर्वाभिमुख होकर क्यों होता है मुख जिस दिशा की ओर होता है मुखसे निकला शब्द अपने गुण को उसी ओर को प्रेरणा करता है। देखो शब्दका प्रभाव स्वाहा और स्वधा शब्दों के निरूपण में क्या कहा गया है।

पितृकर्म के काल

पितृ कर्म्मके कालों पर विचार करने से यह विदित होता है कि यह पितृ कर्म्म का काल बड़े महानुभावों की कुशाग्र बुद्धियों द्वारा सिद्ध होकर कर्त्तव्य कहा गया है। एक कालतो प्रत्येक मासकी अमावस्या है। इसी पितृकर्म्म को दिन प्रति-दिन का पितृ कर्म्म माना गया है। वेदमें भी इस कालका वर्णन आता है। शतपथ ब्राह्मण भी वेदके कथन का समर्थन करता हुआ पितृकर्म्म के काल को इस प्रकार कहता है कि—

मासि मास्येव पितृभ्यो ददतो यदेवैष न पुरस्तान्न पश्चात् ददृशे अथेभ्योददाति। एष वो सोमोराजा देवानामन्न यश्चन्द्रमाः। स एतां रात्रिं क्षीयते। तस्मिन् क्षीणे ददाति। स वा अपराह्णे ददाति। पूर्वाह्णे वै देवानां माध्यन्दिनो मनुष्याणां मपराह्णः पितृणाम्। तस्मादपराह्णे ददाति।

शतपथ काण्ड २।

जब यह चन्द्रमा न पूर्व दिशामें प्रकाशित हो और न पश्चिम में सूर्य्य की राशि में स्थित हो, सूर्य्य के साथही उदय और अस्त हो यह इस रात्रि में क्षीण होता है। यह रात्रि सोम राजा देवतों का अन्न है, इसकी प्रदान की हुई शक्तिके द्वारा देवों का पोषण होता है, जो इसकी क्षीण दशामें इसको अर्थ दिया जाता है वह अपराह्ण में दातव्य है पूर्वाह्ण देवों का और मध्यान्ह मनुष्यों का इसी प्रकार अपराह्ण पितरों का काल है। इन प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि पितृकर्म्म का काल मासमें एक बार अमावस्या है।

पाठकवर्ग! यह काल पितृकर्म्म का किसी साधारण व्यक्ति

की कल्पना नहीं, बड़े मान्य ग्रन्थों में इसका वर्णन है अतएव यह बलात् मानना पड़ेगा। किन्तु यहां महानुभाव पाठकगणों को यह वक्तव्य होगाकि यह काल तो अवश्य मानना ही होगा यह भी तो विदित होजाना अवश्य है कि इसी कालमें क्या विशेषता है।

पाठक महानुभावों के इस प्रश्न का उत्तर देने के अर्थ भी कुछ थोड़ा लेख बढ़ाना अवश्य हुआ। वर्त्तमान युगमें सतर्क बात ही मानने की परिपाटी चल रही है। श्रद्धाभक्ति से शून्य हृदयों में शंकाही का निवास होता है।

पाठकगण! यह पूर्व कह आये हैं कि यह रचना शीत और उष्ण इन दो ही बीजों का विकार है। अस्मदादि तथा अन्य स्थावर जंगम रचना के जीवन तथा स्थितिके यही दोनों बीज कारण विशेष हैं। यह भी आप महानुभावों को ज्ञात कराया जा चुका है कि शीत और उष्णकी साम्यता ब्रह्माण्ड की स्थिति का कारण है। इन दोनों बीजों की साम्यता के साक्षी रात्रि दिन तथा मास के दोनों पक्षादि प्रत्यक्ष हैं।

इनदोनों शीत उष्ण बीजों में शीत प्रधान अंधकार विष-गुण का उत्पादक होने से मृत्यु है और उष्ण गुण प्रधान प्रकाश जीवन है। परमात्माने भी इस मृत्युरूप अंधकार की शुद्धि के अर्थ प्रकाशको अनेक रूपों में विभक्त किया है। दिन में सूर्य्य रात्रि में चन्द्रमा तथा अनेक नक्षत्र अपने प्रकाश से

अंधकार का शोधन करते हैं। चन्द्रमा को अमृतमय बनाने से यह भली प्रकार सिद्ध होता है कि यह अंधकार के विषको शान्त कर रचना की रक्षा करे, वेदवित् विद्वानों ने भी ऐसाही माना है। अंधकार मृत्यु है और प्रकाश जीवन है लोक व्यवहार से भी यही ज्ञात होता है प्रकाश जाग्रति गुणवाला है और अंधकार स्वप्नावस्था प्राप्त कराने वाला। ग्रामीण भी कहते हैं कि नित्य जीवन और प्रलय होते हैं जागना जीवन और सोना मृत्यु है। प्रलय में भी अंधकार माना जाता है। इत्यादि प्रमाणों से अंधकार मृत्यु है। अंधकार की वृद्धि जीवन का ह्रास और रोगोंका कारण है ज्ञान की न्यूनता भी होती है, ज्ञानेन्द्रियों का शैथिल्य भी अंधकार से होता है, यद्यपि रात्रि सदैव ही अंधकार का समूह है किन्तु सर्व रात्रियों में चन्द्रमा किसी न किसी अंश में प्रकाशित हो अन्धकार के विष को शान्त करते हैं। आज अमावस्या को अन्धकार की समाप्ति होती है और चन्द्रमा भी अपनी अमृतमयी किरणों का प्रभाव डालनेमें असमर्थ है यह रात्रि जीवन के अर्थ भयावनी प्रतीत होती है इस दिन पितृकर्मके द्वारा अपनी तथा अपने परिवार की रक्षा कर्तव्य है। अपनी रक्षा और रचना के स्तम्भ पितरों को बल देना अपना कर्तव्य है। अमावस्या के विषय में यह कल्पना हमारी ही नहीं वेद भगवान भी इस भयावनी रात्रि के विषय में उपदेश देते हैं:—

अमावस्यां रात्रिमुदस्थु आजमत्रिणः ।
अग्नितुरोयो यातुहा सोऽस्मभ्यमधिब्रुवत् ॥

अथर्वकाण्ड १ । सूक्त १६

(अमावस्याम्) अमावस्या तिथि विशेषमें । (रात्रिम्) रात्रि के प्रति (अत्रिणः) भक्षण करने वालों के (आजम्) समूह (उदस्थ) बढ़ आये हैं उन को (स) वह (यातुहा) पीड़ाप्रदों का हनन करने वाला (तुरोयः) अति वेगवान् (अग्निः) अग्नि (अस्मभ्यम्) हमारे हित के अर्थ (अधि-ब्रुवत्) उन को घोषणा करै ।

इस वेद मन्त्र से भी यह ध्वनि निकलती है कि अन्य अन्धकार युक्त रात्रियों की अपेक्षा अमावस्या की रात्रि भयावनी अवश्य है ।

पाठक गण ! यह पूर्व कह आये हैं कि पितृ कर्म्म शुद्ध कर्म्म है, किन्तु प्रभाव इसका द्युलोक पर्य्यन्त होता है । इस पितृ कर्म्म से तीन कार्य्य सिद्ध होते हैं । प्रथम कार्य्य है पितृयानस्थ पितरों को बल प्राप्त कराना । द्वितीय कार्य्य है अन्धकार विशेष अनेक रोगों के कीटाणुओं का विनाश । तृतीय कार्य्य है गृहों की शुद्धि और आने वाले पक्ष से शुद्ध अन्धकार का मेल । अमावस्या से अगले पक्ष में चन्द्रमा प्रकाशित होंगे, उन की क्षीण दशा में यह अमावस्या का दि

रूप अन्धकार बाधा न डाले, इस अन्कार को शोधन करना ही इसकार्य्य का उद्देश्य है ।

पाठकगण ! आप को विदित हो कि अग्निहोत्र और पितृ कर्म्म विशेषतया तो गृह कार्य्य हैं, पितृकर्म्मभी विशेष कर गृह कार्य्य है कारण कि जिस अन्धकार की शुद्धि कर रोगों से रहितहो जीवनका लाभप्राप्त करना है वह अन्धकारगृह विशेषों में होता है। अजिर आदि स्थानों में प्रकाश का बाहुल्य होना है। दिन के भाग में सूर्य्य और रात्रि के भागों में चन्द्रमा नक्षत्र अपने प्रकाश का भाग डालते हो रहते हैं, किन्तु गृहों में सूर्य चन्द्रमाका प्रकाश नहीं पहुंचतायदि पहुंचताभी है तो बहुतन्यून अंशो। में यदि कहो कि गृह में प्रकाश तो होता है तब कहना पड़ेगा कि छाया रहती है, छाया भी अन्धकारका ही अंश है। बहुत घने को अँधियारा कहते हैं और अन्धकार का सूक्ष्मत्व छाया है जो गुण घनत्व रूप अन्धकार में है अशांशी भाव से वही गुणछाया में भी होना सम्भव है। अन्धकार में वायुशीत विशेष कारण से स्थूल हो कर गृह के भागों में मूर्छित होता है,उस मूर्छित वायु को पितृ कर्म्म के द्वारा उठा कर तरल भाव को प्राप्त करा उस की शुद्धि मानी गई है,इस समय यह विषयजटिल सा प्रतीत होता है परन्तु जब यह पितृकर्म्मके कर्म्मकाण्ड द्वारा आपके सम्मुख उपस्थित होगा तब यही जटिल विषय हस्तामलकवत प्रतीत होने लगेगा।

पाठक गण ! यह आप पूर्व पढ़ चुके हैं कि हम ने बहुत से प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि तत्वोंमें उत्पादक शक्ति करने के गुण वाला वायु ही है, इसी वायु की पिता संज्ञा है बहुत रूपों में विभक्त होने से बहुवचनान्त पितर हो जाता है। गृहों में मूर्छित पितर रूप वायुओं के अर्थ यह पितृ कर्म्म होता है। मूर्छित और मृतक में कुछ अन्तर नहीं होता है किसी स्थूल विचार वाले व्यक्ति ने इन को ही मृत पितर मान लिया हो और इसी आधार पर मृतक श्राद्ध होना आरम्भ हो गया हो तो आश्चर्य भी नहीं। ऐसा देखा जाता है कि किसी कार्य्य का कारण कुछ हो और जनता में किसी रूप से प्रचलित हो गया हो। विचारशीलों को इस लेख द्वारा यह निश्चय हो गया होगा कि वस्तुतः बात यही है जो खोज कर प्रकाशित करी गई है। जो बात युक्तियुक्त और बुद्धि में आने वाली हो वह सभी को माननी पड़ती है। यही कारण इस पितृकर्म्म का प्रतीत होता है जिन महानुभावों ने इस कर्म्म की आज्ञा दी है और वेदने भी बलके साथ करना बताया है, वह अवश्य जनताके अर्थ अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होता है। यह कालभी इस कृत्य का निर्विवाद मानने योग्य है इसमें सन्देह करना अपनी अज्ञानता प्रकट करना है, सहर्ष कर्त्तव्य है।

यहभी पूर्व कह आये हैं कि देव कर्म्म और पितृकर्म्म दोनों की आज्ञा वेद से प्राप्त है, उनमें से देवकार्य्य को स्व मेव

करना और उसी के द्वितीय अंग पितृकर्म्म को हेय समझना कहां की विचारशीलता है। जिस देवकर्म्म की प्राप्ति गृहकर्म्म से लेकर द्युलोक पर्य्यन्त मानी जाती है उसी के द्वितीयभाग पितृकर्म्म की प्राप्ति भी पितरलोक पर्य्यन्त न मानना कहां की मनुसाई है। गृह के ऊर्ध्व भाग की शुद्धि देवकर्म्म से होती है और तलभाग की पितृकर्म्म से। इन दोनों कर्मों का काल भी पूर्णिमा और अमावस्या ही रक्खे गये हैं। इनको अन्यथा करना अपने कल्याण से ही वंचित रहना है।

शरद् ऋतु

पाठकों को विदित हो कि अमावस्या प्रतिमास पितृ कर्म्म की तिथि कही गई है, उस प्रतिमास को ही प्रतिदिन भी माना गया है इसका कारण यह है कि पितरों का दिन एक मास का ही माना गया है, अमावस्या का पितृकर्म्म नित्य है, इसके अतिरिक्त पितृकर्म्म के नैमित्तिक काल भी कहे गये हैं उनमें से शरदृऋतु भी पितृकर्म्म का काल है। लोक व्यवहार में यह दृष्टिगत होता है कि पितृकर्म्म के और काल तो एक ही दिन होते हैं, किन्तु यह काल एक पक्ष पर्य्यन्त पितृकर्म्म के अर्थ ही माना जाता है और कालों के पितृकर्म्म का तो प्रायः अभाव ही दृष्टिगत होता है, यह शरदृऋतु का काल सर्व को बलात् करना होता है इस कालमें निर्धन भी ऋणप्राप्त करके भी पितृकर्म्म करते हैं यद्यपि कुछ आर्य्यसज्जन इस कालके पितृ कर्म्म से अपने को मुक्त समझते हैं, तथापि भारत की

जनता का बहुतसा भाग इस कालके पितृकर्म्म को कर्त्तव्य जानता है।

यदि यहां यह प्रश्न हो कि इस कालमें ऐसी क्या विशेषता है जो जनता को इस पितृकर्म्म के अर्थ ऋणी होने को भी बाधित करती है। तब इसका समाधान यह है कि कार्य्य दो प्रकार के दृष्टिगत होते हैं, एक सामान्य और द्वितीय विशेष सामान्य की अपेक्षा विशेष बलवान होता है। अमावास्या पितृकर्म्म का सामान्यकाल है और यह शरद्ऋतु विशेषकाल है अमावास्या के काल को धर्म्मशास्त्रों ने ही माना है इस शरद् के कालका ग्रहण अन्य आचार्यों ने भी किया है।

शारदीय श्राद्धः

यह पाणिनीयसूत्र भी शरद्ऋतु के श्राद्ध को कहता है भूमिका में सूर्य्य सिद्धान्त का यह वाक्य देचुके हैं कि कन्या की संक्रान्ति के १४ अंश छोड़ शेष सोलह अंशो में दिया हुआ पितरों के अर्थ अक्षय होता है। इन महापुरुषों के कथनसे यह विदित होता है कि शरद्ऋतु पितृकर्म्म का विशेष काल है।

अब यह सिद्ध होगया कि पितृकर्म्म के अर्थ यह काल अत्यन्त उपयोगी है तब यह विचार शेष रहता है कि इस कालमें वह कौनसी अनूठी बात है जिससे इसे इतना उपयोगी समझा गया।

पाठकगण ! विचार करनेपर यह स्पष्ट होता है कि यह काल मानव मण्डल की जीवन यात्रा का एक वर्ष पर्य्यंत सहायक रहता है। अमावस्या में किया पितृकर्म एकमास कार्य्य देता है और शरद् ऋतु में किया एक वर्ष कार्य्य देगा। पाठकगण ! यह आप को स्मरण होगा कि सूर्य्यसिद्धान्तके कर्त्ता मयासुरने इस कालमें पितरों के अर्घ दान देने की महती प्रशंसा करी है जिसके मर्म पर दृष्टिपात न कर सूर्य्यसिद्धान्त के टीकाकार श्री पं० सुधाकर द्विवेदीयजी ने कहा है कि यहाँ दानका कथन असंगत प्रतीत होता है। आप महानुभावों को सूर्य्य सिद्धान्त के कर्त्ता के आशय पर ध्यान देना अत्यन्त लाभकारी होगा।

यह विषय एक लौकिकदृष्टि के द्वारा आप सज्जनों को भली प्रकार ज्ञात होगा।

लौकिक दृष्टान्त

पाठकगण ! यह पूर्व कह आये हैं कि यह हमारा शरीर बड़े ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति है। जिस प्रकार जल अग्नि और वायु ब्रह्माण्ड में कार्य्य कर ब्रह्माण्ड को स्थिति का कारण हैं, तिसी प्रकार कफ रूप से जल और अग्नि रूप से पित्त एवम् वायु हमारे शरीर में कार्य्य करते हैं। यह भी कह चुके है कि शरीर में दोषों की साम्यता निरोगता है और विषमता रोग माना गया है।

ब्रह्माण्ड में भी उक्त जलादि की साम्यता ब्रह्माण्ड को

प्रकृतिस्थ रखने का हेतु है। क्या यह हम से अप्रकट है कि ऋतुओं के द्वारा उक्त तत्वों की ही साम्यता होती है। शरीर में रहने वाले जलादि तत्वों को दोष और ब्रह्माण्ड में कार्य्य करने वालों को तत्व कहते हैं।

हमारे शरीरों की चिकित्सा वैद्य आयुर्वेद द्वारा करते हैं और ब्रह्माण्ड की चिकित्सा ऋतुओं द्वारा परमात्मा सूर्य्य तथा चन्द्रमा द्वारा स्वयं करता है।

आयुर्वेद विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि मनुष्य का जीवन आहार पर निर्भर है. जो आहार नित्य भक्षण होता है उसी के द्वारा शरीर का पोषण होता है। हमारे शरीर के अवयव अपनी शक्ति से भक्षण किये पदार्थों में से अपने उपयोगी अंशों को ग्रहण कर स्थूल भाग को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। शरीर से बाहर निकलने वाले भाग को मल कहते हैं, यद्यपि यह मल अनेक रूपों से बाहिर हो जाता है तथापि कुछ भाग अवयवों में रह भी जाता है। जब यह रहा हुआ भाग अधिकता से संचित हो जाता है और उस से रोग का दर्शन होता है या होने की संभावना प्रतीत होती है, तब वैद्यवर उस मल को निकालने के अर्थ रेचन की क्रिया को कार्य्य में लाते हैं, रेचन के द्वारा निकला हुआ वह मल उतने काल पर्य्यन्त जब तक कि वह पुनः संचित हो, बाधा न करे तब तक शरीर निरोग रहता है, पुराने मल के रेचन के समय शरीर में निर्बलता प्रतीत होती है तब वैद्य निर्बलता को हटाने

के अर्थ पौष्टिक पदार्थ देते हैं। शुद्धनाड़ियों में पौष्टिक पदार्थ बल का संचार कर शरीर को बलवान् बना कार्य्य करने में समर्थ कर देना है जैसे हमारी चिकित्सा वैद्य करता है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड की चिकित्सा परमात्मा ऋतुओं द्वारा करता है।

पाठकगण! यह आप देखते हैं कि देवगण आठ मास निरन्तर जलीय भाग का पान विशेषता से करते हैं यद्यपि वह आकर्षित जल समय २ पर कार्य्यदाता होता है। परन्तु मेघ मण्डल में स्थित भी रहता है यह भी जानना उचित है कि वह जल देवगण तथा पितृगण का एक प्रकार का संचित मल है। जैसे हमारे शरीरों तथा पशु आदि का मल क्षेत्रों के अर्थ बलदायक होता है इसी प्रकार पितरों तथा देवगण का संचित जल रूप मल क्षेत्रों का बल माना गया है। इस ऋतु में देव तथा पितरों की चिकित्सा वर्षा रूपी रेचन क्रिया के द्वारा होती है। मनुष्य को रेचन क्रिया के अर्थ दश बारह दिवस पर्य्याप्त माने गये, बहुत बृहत् ब्रह्माण्ड के रेचन के अर्थ चार वा तीन मास पर्य्याप्त जाने गये। जैसे रेचनके पश्चात् हमारे शरीर का मल निकाल कर नाड़ियांरिक्त हो निर्बलता करती हैं तैसे ही मेघ मण्डल का संचित जल निकलने से वेरिक्त हो जाते हैं- जिस प्रकार उस समय पौष्टिक पदार्थ भक्षण कर हम बलवान् हो अपने कार्य्य करने में समर्थ होते हैं, तैसे ही इस समय के पितृ कर्म्म के द्वारा [illegible] और पितरों के द्वारा

देवगण पुष्ट हो वर्ष पर्य्यन्त मानव मण्डल तथा अन्य हमारे सहायक पदार्थों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं इसी हेतु विशेष को लक्ष्य धर सूर्य्य सिद्धान्त के निर्माण कर्त्ता ने इस समय पितरों के अर्थ देनेकी आज्ञा प्रदान की है । ऐसा प्रतीत होता है ।

पाठकगण! यह पूर्व कह चुके हैं कि पितृ कर्म्म गृहों की शुद्धि के अर्थ होता है, इस ऋतु में वर्षा के कारण गृहों में अंधकार के साथ आर्द्रता बाहुल्येन हो जाती है। स्थानों में दुर्गन्धि (सड़न) भी विशेष बढ़ जाती है, उस को हटाने के अर्थ यह कार्य्य पक्ष भर करने की आवश्यकता है । किसी बड़े कार्य्य के अर्थ बड़ी ही विधि भी होनी उचित है यही ऋतु वर्षा का अन्त है । इस हेतु से शरद् का आदि काल ही इस कार्य्य के अर्थ उपयोगी समझा गया है ।

पाठक वृन्द ! इस लेख के द्वारा आप को यह विदित हो गया होगा कि वस्तुतः यह शरद् ऋतु भी पितृ कर्म्म का अत्यन्त उपयोगी काल है । जिन महानुभावों ने अपनी दीर्घ दर्शिता से यह काल पितृ कर्म्म के अर्थ नियत किया है, वे महापुरुष मानव मण्डल के सच्चे हितैषी थे । हम को उनका हार्दिक भाव से धन्यवाद देते हुए इस कर्म्म को बाहुल्येन हर्ष पूर्वक कर के कृतज्ञता का पात्र बनना उचित है । किसी हितैषी को आज्ञा पालन न करना पाप को अपने शिर थोपना और अपने कल्याण से भी वंचित रहना है ।

पितृ कर्म्म का एक काल अष्टका भी कहा गया है।

अष्टका पितृदैवत्ये

यह पाणिनीय महाराजका एकसूत्र है। यद्यपि इस सूत्रमें पितृ कर्म्म की आज्ञा नहीं दी गई। यहां तो यह बताया गया है कि पितृ और देव कर्म्म के अर्थ जो अष्टका है यहां अकार को इकार न हो तौ भी इससे इतना पता चलता है कि जिन अष्टकाओं में पितृ और देव कर्म्महो वहां का परे होने पर पूर्वके अकार को इकार न हो। इस सूत्रके भावसे यह ज्ञात हुआ कि अष्टकाओं में भी पितृ कर्म्म कर्तव्य है।

जिन को अष्टका कहते हैं वह काल पौष माघ और फाल्गुन मासों की कृष्णा अष्टमी हैं, अष्टकाओं की व्युत्पत्ति में कहा गया है कि —

अश्नन्ति पितरोऽस्यामन्नमिति अष्टकेति ।

पाठक गण! इस प्रकार पितृकर्म्मके काल विदित होते हैं यह हम पूर्व कह आए हैं कि वैदिक मत के प्रत्येक कर्म्म पर विचार करने वाले आयुर्वेद वेत्ता ऋषिवर ही होते आए हैं। जिस २ कालको मानव मण्डलकी जीवन यात्राका बाधक जाना उसी समय उस कर्म्मकी आज्ञा दी है, जिससे वह कालवा ऋतु शुद्ध हो मानवमण्डल की जीवन यात्रा में बाधा न कर सुख-कारी हो। ये काल इस पितृ कर्म्म की उत्कृष्टता के स्पष्ट-तथा बोधक हैं। हमारा यह सिद्धान्त कि पितृ कर्म्म पवनदेव

जो इस ब्रह्माण्ड और हमारी निवासस्थानीय पृथिवी के एक मात्र अवलम्बन हैं। जिस की विकृति अनेक विकारों को उत्पन्न करने वाली और प्रकृतिस्थ निरोगता तथा कल्याण प्रद है उन पवन देव को प्रकृतिस्थ रखने के अर्थ हैं जिस काल में पवन देव को विकृति की सम्भावना जानी गई वही काल पितृ कर्म का भी नियत हुआ।

वायु देव की विकृति के कालों के विषय में आयुर्वेदाचार्यों ने निम्न प्रकार कथन करा है। हारीत संहिता के रचियिता हारीत ऋषि कहते हैं कि:—

कार्तिकके मार्गशीर्षे वा माघे चाषाढ संज्ञके।
ऋतुसंधौ च हेमंते सविषः स्यात्तु मारुतः।

कार्तिक तथा मार्गशिर एवं माघ और आषाढ़ ऋतुओं की संधि और हेमन्त में वायु सविष होता है। इसी कालके लगभग निम्न काल भी दूषित है।

कार्त्तिकस्यदिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्यच ।
यमदंष्ट्रा समाख्याता अल्पाहारी स जीवति ॥

कार्तिक शुक्ल अष्टमी से मार्गशिर वदि अष्टमी को काल की यम दंष्ट्रा संज्ञा मानी गई है, इस कालमें वायु की शुद्धि और अग्नि की रक्षा विशेष कर्तव्य है।

पाठकगण! जिन कालों के पवन देव दूषित होते इति

गत हुए उन ही कालो में पितृकर्म्म को आज्ञा भी पाई जाती है इन प्रमाणों से हमारा यह विचार अत्यन्त पुष्ट होता है कि पितर वायु हैं और उन की शुद्धि तथा प्रतिष्ठा रखने के अर्थ पितृ कर्म्म है।

जिन महापुरुषों ने यह माना है कि (श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्।

उनके मतसे निम्न लिखित भी श्राद्ध होता है। महाभारत में नहुष और युधिष्ठिर के संवाद में नहुष प्रश्न करते हैं कि—

कथयस्व महाबाहो यः कालः श्राद्धदानयोः।
यत्नेन महताविष्टः प्रश्नं कथय सुव्रतः॥

नहुष कहते हैं कि महाराज युधिष्ठिर आप इस प्रश्नका कि दान और श्राद्ध का उत्तम काल कौन है समाधान कीजिये।

युधिष्ठिर उत्तर देते हैं कि—

यत्रैव ब्रह्मणं पश्येच्छ्रोत्रियं विजितेन्द्रियं।
रागद्वेष विनिर्मुक्तं वैष्णवं वीतकल्मषं।
येन केनचिदाछन्नं यत्र तत्र निवासिनं।
एतत्काल महामन्ये परमं श्राद्ध दानयोः॥

जिस समय श्रोत्रिय और जितेन्द्री राग द्वेष रहित परमात्मा का भक्त चाहे सुदशा में हो वा दुर्दशा में ऐसा ब्राह्मण प्राप्त हो उसकी अन्नादि से सेवा करना उत्तम श्राद्ध और धनादि देना उत्तम दान है।

पाठकगण ! यह भी श्राद्ध है किन्तु जो श्राद्ध पितरों के अर्थ किया जाता है और वेद स्मृतियों मे जिसकी आज्ञा पाई जाती है इस उक्त श्राद्ध से उसकी पूर्ति होना असम्भव है वस्तुतः श्राद्ध पितृकर्म्म ही है।

अब हमें इस विषय में और विशेष कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कारण कि इस विषय में जो कुछ अपनी तुच्छमति से जाना उसको यथामति सभी प्रकार कह दिया। हां ऐसा होसकता है कि यदि इस पर सज्जन विचार कर कहीं दोष दर्शन कराने की कृपा करेंगे उसपर यथामति पुनः विचार करके जैसा होगा समाधान करने का यत्न किया जायगा। बिना विचारे निरर्थक उट्टंकना पर विचार न होगा। यह भी आशा है कि सज्जन विचार शील इस पर विचार कर सहर्ष अपनायेंगे। कारण कि (विद्वान्नेव जानाति विद्वज्जन परिश्रमम्)

यह किसी कविका वचन है किसी श्रमी के श्रम को विद्वान् ही जानता है। किसी मौलिक बात को खोज निकालना ही कठिन होता है। प्रवाह में पड़ा हुआ मनुष्य प्रवाह से ही

छुटकारा नहीं पाता तटस्थ ही प्रवाह में पड़े हुओं को कुछ सुख दिला सकता है। श्रीस्वामी दयानन्द जी महाराज जी के पूर्व यही सर्वग्रन्थ थे जिनका आश्रय उक्त स्वामी जी ने ग्रहण किया। उन्हीं ग्रन्थों के अवलोकन से स्वामीजी ने क्या कुछकर दिखाया! इसका कारण यही तो था कि श्रीस्वामीजी ने उन ग्रन्थों को पक्षरूप प्रवाह में न पड़कर अवलोकन किया। पक्षरूप प्रवाह में पड़कर मनुष्य चक्षुहीन भी माना जाता है। इसलिये पक्ष की चाक्षुष्य हटाकर देखना उचित है। जिस पर हमने यह विचार किया है वह कोई छोटी मोटी बात नहीं वेदका मौलिक सिद्धान्त है. जिस वेदका सिद्धान्त संसार में फैलाना आर्यसज्जनों का परम कर्तव्य है। इस पर अन्य सज्जनों को गम्भीरभाव से विचार करने की आवश्यकता है।

सज्जनों से प्रार्थना

जिस दुर्दशासे यह विषय समाप्त हुआ है, वह मुझसे कहने पर जाना जासकता है लेखमें कहना केवल लेख वृद्धि करना है परमपिता परमात्मा का हार्दिक धन्यवाद है कि जिसकी कृपा कटाक्ष से मैं इस दुस्तर कार्यको समाप्त करने में समर्थ हुआ। यदि स्वस्थता रही और दैवीशक्ति अनुकूल हुई और सज्जनों ने भी इसे अपनाया तो इसके द्वितीयभागमें पितृकर्म का पद्धति भी तैयार करने का प्रयत्न करूँगा। पद्धति को निर्माण करना कुछ कठिन नहीं अन्य सज्जन भी निर्माण कर

सकते हैं। कठिन कार्य्य यही थो जिसका खोज बड़े २ दिग्गज विद्वान् भी न करसके। प्रवाह में ही बहते रहे पद्धति के ग्रन्थ बहुत मिलते हैं, उनमें से वह भाग निकालना पड़ेगा जो मृतक पितरों से सम्बंध रखने वाला शेष सुगम है यदि रोग सागर से छुटकारा पाकर निरोगता रही तो मैं हां पद्धति भी तय्यार करूँगा जिन सज्जनों को यह विषय रुचिकर हो और वे महानुभाव पद्धति अवलोकन करने की उत्कण्ठा विशेष रखते हों वे महानुभाव मेरे स्वस्थ होने पर्यन्त प्रतीक्षा करें। पितृ कर्म्म की जटिल समस्या इस लेख से इतनी स्फुट होगई कि जिससे सज्जनों को अब इसकी खोज की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती

आर्य्यसज्जनों के प्रति निवेदन

आर्य भ्रातृवर्य ! आपने आर्य्यसमाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के बड़े भारी कार्य्य को अपने स्कन्धों पर लियाहै। आपका कर्तव्य वेद का ज्ञान फैलाकर संसार को अन्धकार के गर्त्त से निकालना है। वेद आपका मान्य है अपने अपने मान्य की अवहेलना स्वयं करना वा अन्यों से कराना लज्जास्पद है। आपको वेद के मौलिक सिद्धान्तों पर गूढ़ विचार कर अपना और अज्ञजनता का हित करना उचित है। मैंने जो कुछ इस विषय में विचारा है वह निशंकता से आपके समक्षमें रख दिया है। यह भी आप सज्जनों को विदित है कि जब कोई

मार्ग कंटकाकीर्ण होजाता है तो उसके शोधन के अर्थ किसी साहसी जीव की आवश्यकता होती है। यह मुझको भी विदित है कि इस विषय पर अविचारशील वैदिक पथ के कटंक जिन का सम्प्रति समाजोंमें बाहुल्य है, बहुत कुछ उट्टंकना उठायगे। इसकी शंका न कर विचार शील सज्जनों से यह भी आशा है कि वे इसे अपना कर मेरे तुच्छ विचारों को अपने उच्च विचारों से बृद्धि करेंगे क्षुद्र चेता पुरुषों के विचारों का मूल्य एक वराटिका का भी नहीं होता। उच्च कोटि के विचार बहु मूल्य होते हैं जिस बात को उच्च कोटि के विचार अपनाते हैं उसका प्रकाश संसार में होता है। यदि आप सज्जनों को इस विषय में वक्तव्य हो वह विचार करने के पश्तात् नाम से ही न होना चाहिये।

जबमैं यहलेख लिख रहा था तब एक महानुभाव मेरे समीप आये मैंने उनसे कहा कि मैं पितृ कर्म्म पर विचार कर रहा हूँ। बस इतना श्रवण कर मुझ से कुछ न कह इतस्ततः यह कहना आरम्भ कर दिया कि अमुक तो मृतक श्राद्ध मानने लगे ऐसा विचार रखना उचित नहीं। मेरी यही प्रार्थना है किइस हटको छोड़ो कि जिस बात को हम अन्यों के समक्ष निषिद्ध कह चुके हैं वह यदि हमारे मौलिक सिद्धान्त का ही अंग क्यों न हो उसके प्रतिपादन में हमारी क्षति हैं, नही मानेगें। यह हठहै जो बिचारशीलों का भूषण नहीं दूषण है। अपने माने हुए नियमों

के विरुद्ध है। यह भी ज्ञात हो कि सत्य बात अन्तःकरण में स्वयं प्रवेश कर जाती है यदि यह विचार हमारा युक्ति युक्त और वेद का मौलिक सिद्धान्त है तब इसको सत्यग्राही अवश्य स्वीकार करेंगे। इति

सज्जनों का कृपापात्र—

आश्विनशुक्ला ४
१९८३ वि०

हरिशंकर दीक्षित
नगीना निवासी

सूचना

जिन सज्जनों के पास बिना मुहर की पुस्तक होगी, वह चोरी की समझी जायगी।

—प्रकाशक